वर्ष-34, अंक-392

संपर्क भाषा भारती

वर्ष 1990 से प्रकाशित कथा साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, जून—2023, RNI-50756

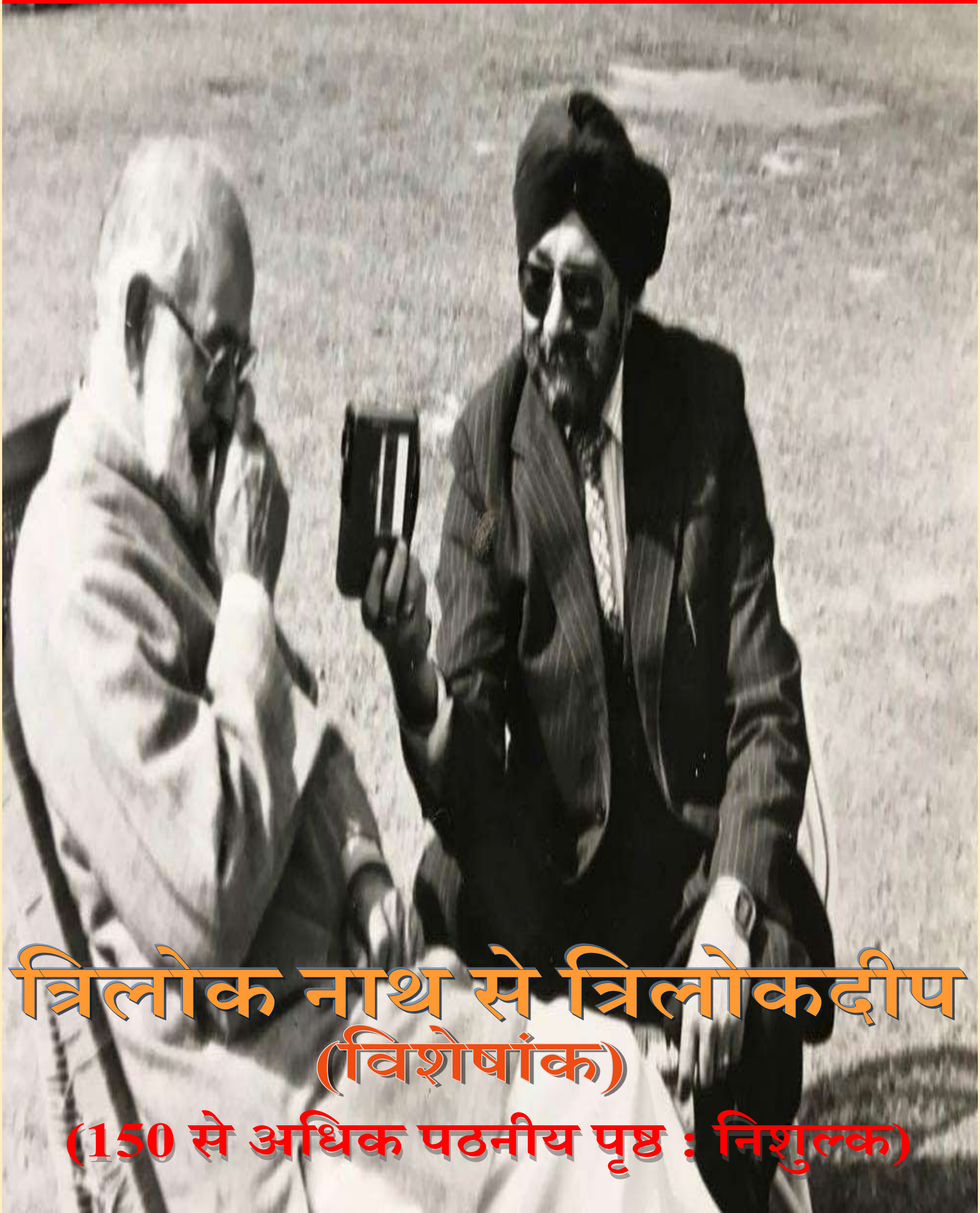

त्रिलोक नाथ से त्रिलोकदीप
(विशेषांक)
(150 से अधिक पठनीय पृष्ठ : निशुल्क)

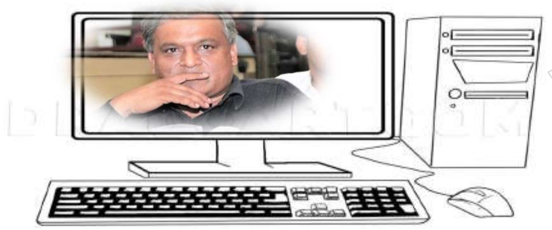

अपनी बात...

संपर्क भाषा भारती पत्रिका के समस्त पाठकगण नमस्कार!

आपकी पत्रिका ने विगत माह यह निर्णय लिया था कि पत्रिका अपना जून 2023 का अंक हिन्दी पत्रकारिता के परिचित चेहरे श्री त्रिलोक दीप को समर्पित करेगी।

जुलाई 2023 का अंक यशस्वी कथाकार श्री सुरेन्द्र सुकुमार तथा अगस्त 2023 का अंक लोकप्रिय नवगीतकार डॉक्टर धनंजय सिंह के सम्मान को समर्पित होगा।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि आपकी पत्रिका आज अपने निर्णय को पूरा कर पाने में समर्थ सिद्ध हुई है।

आमूमनतौर पर प्रत्येक माह 50-60 पृष्ठ समेटे **आपकी पत्रिका इस अंक में 172 पठनीय सामग्री समेटे हुए है।**

पत्रिका को तैयार करते हुए मुझे भी विगत दिनों में लौटने को मजबूर होना पड़ा उसका एक मात्र कारण यह रहा कि श्री त्रिलोक दीप हिन्दी पत्रकारिता के उस युग के द्योतक हैं, उस युग की पहचान हैं जिस युग ने पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अप्रतिम हस्तियों को प्रतिष्ठापित किया जिनके साथ मुझे भी जीने का अवसर प्राप्त हुआ था। भवानी प्रसाद मिश्र, जैनेन्द्र जैन, डॉ लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, यशपाल जैन, कमलेश्वर, शैलेश मटियानी, राजेंद्र यादव ....अनगिनत नाम। ये नाम मात्र नाम नहीं हैं, अपने क्षेत्र के पारभाषिक शब्द हैं जिनका अर्थ विस्तार असीम है। इसी तरह से 1986 से 2000 तक आकाशवाणी में समाचार वाचन के दौरान देवकी नन्दन पाण्डेय, अनादि मिश्र, रामानुज प्रसाद सिंह, जयनारायण शर्मा, अशोक वाजपेयी, कृष्ण कुमार भार्गव, इन्दु वाही, विनोद कश्यप, क्लेयर नाग, अखिल मित्तल......

त्रिलोक दीप पर आए कई लेखों ने स्मृतियों को सुगंधित कर दिया।

प्रयाग शुक्ल, उदय प्रकाश, संतोष भारतीय, सुधेन्दु पटेल......अरविंद कुमार सिंह, सर्जना शर्मा और बहुत सारे नाम ऐसे आए जिन्हों ने 1980 के बाद हिन्दी पत्रकारिता के दौर को मेरे मन-मस्तिष्क पर पुनः किसी सिनेमा की तरह उछाल दिया हो।

प्रयाग शुक्ल और उदय प्रकाश को निश्चित रूप से स्मरण नहीं होगा कि उनकी सकारात्मकता और उत्साहवर्धन के परिणाम से मैं अकूत लाभ में रहा। दिनमान में 1980 के दशक में मेरा प्रवेश हो चुका था। मेरी कई स्टोरीज़ छप चुकी थीं। उदय प्रकाश जी कहने पर मैं, दिनमान के लिए विदेशी घटनाओं पर संक्षेप में लिखने लगा था।

प्रयाग शुक्ल जब नवभारत टाइम्स के रविवासरीय परिशिष्ठ के संपादक बने तो उन्होंने नशे के व्यवसाय पर मेरी कथा को 1985 में आद्योपांत नवभारत टाइम्स में प्रकाशित किया, पूरे पृष्ठ पर। उन्हें कदापि ध्यान नहीं होगा कि उन्हों ने मुझ से पूछा था "तुम इतनी बड़ी स्टोरी कैसे लिख लेते हो?" उन्हों ने यह भी पूछा था कि "इस स्टोरी के लिए कितने पैसे लोगे?"

मेरा उत्तर था, "मैंने कभी नवभारत टाइम्स के लिए नहीं लिखा है, मैं यह दुर्ग भेदना चाहता हूँ।" उन्हों ने हाथ से लिखित स्टोरी देखी और कहा "मैं तुम्हें इसके सर्वाधिक पैसे दिलवाऊंगा, और बचे हुए हिस्से को भी अगले अंक में उपयोग करूंगा। उन्हों ने वैसा ही किया।

फिर, 96 वर्षीया शीला झुनझुनवाला जी को कैसे भूल सकता हूँ, जिन्हों ने मुझे साप्ताहिक हिंदुस्तान में कई कवर स्टोरी प्रदान कीं। इन्हीं प्रकाशनों का परिणाम यह रहा कि मैंने जहां-जहां हिन्दी अधिकारी पद केलिए आवेदन किया, सब ने मुझे नियुक्ति पत्र प्रदान किए।

और फिर, श्री प्रभाष जोशी जी। जिन्होंने एक अविस्मरणीय साक्षात्कार के बाद मुझे जनसत्ता में वरिष्ठ रिपोर्टर के रूप में रोहतक ज्वाइन करने का नियुक्ति पत्र, बढ़े हुए वेतन के साथ प्रदान किया।

अपनी इन्हीं कुछ स्मृतियों को मैंने जीने का प्रयास किया है.....अपने श्रेष्ठिजनों को भी नमन किया है। इसी अंक के पृष्ठ 43 पर....कृपया पढ़िएगा अवश्य।

सादर,

सुधेन्दु ओझा

जून——2023

क्रम सं:	शीर्षक :	लेखक :	पृष्ठ संख्या :
1	संपादकीय		2
2	पिता एक रिश्ता है तो....	कृष्ण कुमार यादव	6-8
3	खुश हो जाइए	सोनम लववंशी	9-11
4	कविता	अर्चना गौतम मीरा	11
5	लघुकथा	इन्दु सिन्हा 'इन्दु'	11
6	कहानी : वेदना	मनीषा जोशी मनी	12
7	कहानी : अतीत का सफर	विनोद क्वात्रा	13-14
8	पर्यावरण संरक्षण के प्रति....	आकांक्षा यादव	15-19
9	व्यंग्य : सम्मान इनका भी होना चाहिए	डॉ रमेश कटारिया 'पारस'	19
10	भोजपुरी के कवि : प्रभाकर धर द्विवेदी 'लंठ'	शशिबिन्दु नारायण मिश्र	20-26
11	विज्ञान व्रत की 3 ग़ज़लें	विज्ञान व्रत	26
12	भारतेन्दु की गज़लों में राष्ट्रीयता	डॉ जियाउर रहमान जाफरी	27-33
13	लघुकथा	मिन्नी मिश्रा	33
14	दीर्घ कथा भाग-1 दो नैना मतवारे	रामानुज अनुज	34-37
15	पुस्तक समीक्षा : रात खिड़कियों से	भोला नाथ कुशवाहा	38-३9
16	पुस्तक समीक्षा : लघुकथाओं का खज़ाना	सिद्धेश्वर	40-41
17	विशेषांकों की शृंखला	सुधेन्दु ओझा	43-50
18	मेरे मित्र श्री त्रिलोकदीप	गोपाल चतुर्वेदी	51-52
19	अभिव्यक्ति की आज़ादी के पक्षधर	प्रकाश उदय	53
20	अंकल!!	आशीष राजौरिया	53
21	सृजन सरोकारों के मार्गदर्शक...	अरुण कुमार नैथानी	54-55
22	पत्रकारिता के प्रेरणा स्तम्भ	सुषमा गजापुरे	56-59
23	बेमिसाल दीप	अमिताभ शुक्ला	59
24	त्रिलोक दीप आलोकित करते पत्रकारिता...	विवेक शुक्ला	60-62
25	अनजान को भी अपना बना लेने वाले	शम्भूनाथ शुक्ल	63-65
26	यारों का यार सदाबहार	महेश खरे	66-67
27	आंधियों में प्रज्ज्वलित दीप हैं	सुनीता सभ्भरवाल	68-69
28	दिलदार, जाँबाज़ पत्रकार	टिल्लन रिछारिया	70-75
29	काका के भाजी	बिंदिया	75
30	त्रिलोक दीप एक नज़्म में	प्रयाग शुक्ल	76
31	हिन्दी पत्रकारिता की अखंड ज्योति	गिरीश पंकज	77-79

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-110092 फोन : 9868108713

क्रम सं:	शीर्षक :	लेखक :	पृष्ठ संख्या :
32	हिन्दी पत्रकारिता के दीप स्तम्भ	सर्जना शर्मा	80
33	हमारे दीप अंकल	हेमा सिंह	81
34	परम आदरणीय और परम पूज्य...	संतोष भारतीय	82
35	त्रिलोक जी और रमेश हमें बहुत स्नेह करते थे	सुरेन्द्र सुकुमार	83
36	उनकी फैमिली के बिना....	सुषमा जगमोहन	84-86
37	त्रिलोक भाई का विश्वासी	चंचल	86
38	संत समाज के प्रति....	राघवाचार्य जी महाराज	87
39	आज की पत्रकारिता जगत की....	जितेंद्र माथुर	88-89
40	एक सच्चे और अच्छे कलम के.....	राजेंद्र भारद्वाज	90-92
41	दीप जी मेरे वरिष्ठ हैं	विष्णु नागर	92
42	त्रिलोक में प्रकाशित हुआ दीप	नीलम महाजन सिंह	93
43	त्रिलोक जी दिनमान के अघोषित....	नरेश कौशिक	94
44	उनकी आँखों में है एक पूरी....	जयंती रंगनाथन	95-96
45	देखना समझना त्रिलोक दीप को....	महेश दर्पण	97-101
46	हरीश जी किद्दर जा रहे हो?	हरीश चन्द्र संसी	102-103
47	देश के शीर्ष पत्रकार....	ललित वत्स	104-105
48	भोलेपन और सादगी....	जया रावत	106-107
49	समाज के वंचित पीड़ित.....	श्री बैजनाथ जी	108
50	त्रिलोक के पीछे का दीप	अनिल शुक्ल	109-111
51	शानदार व्यक्तित्व	संगीता शर्मा	111
52	अज्ञेय जी की कसौटी पर.....	इंद्रजीत सिंह	112-113
53	दीप प्रकाश ही.....	डॉ विनीता गुप्ता	114-115
54	सामाजिक सरोकार....	अयोध्या प्रसाद	116-117
55	पानी रे पानी	कमल लाल	117
56	संवेदनशील पत्रकारिता....	उदयवीर सिंह	118
57	दीप जी की अनेक.....	वसंत सहाय	119-120
58	कर्मपथ का एक गुपचुप.....	प्रेम जनमेजय	121-124
59	त्रिलोक दीप आदर्श व्यक्तित्व	दिविक रमेश	125-127
60	व्यक्तित्व से परे एक....	अरविंद कुमार सिंह	128-130
61	हिन्दी पत्रकारिता के आकाश	संजीव आचार्य	131-132
62	पत्रकारिता लोक का....	राजेश बादल	133-134
63	पत्रकार, रचनाकार	स्वामी सुमेधानंद सरस्वती	134
64	पत्रकारिता के बेमिसाल....	प्रदीप सरदाना	135-137
65	तुम्हारे आलेख का इंतज़ार है...	अतुल गंगवार	137
66	हिन्दी पत्रकारिता...	शीला पंत	138-139
67	यथा नाम तथा गुण	लोकेश शेखावत	140-142

68	दीप जी तुस्सी....	मुक्तेश पंत	143-144
69	दीप साहब मेरे....	कमलेश कुमार कोहली	145—147
70	सिद्ध पत्रकार....	सुधेन्दु पटेल	148
71	मेरी ज़िंदगी में....	प्रो संजय द्विवेदी	149-150
72	हर दिल के प्रिय....	शीला झुनझुनवाला	151-153
73	एक युग के साक्षी रहे....	नीरज मनजीत	154-155
74	मैं, रावलपिंडी और रायपुर.....	त्रिलोक दीप	156-165
75	दीप सर	अनीता चौधरी	165
76	अनुज से प्रेम और सम्मान	अनिल त्यागी	166-167
77	जिसको गुस्सा नहीं आता...	अनिल माहेश्वरी	167
78	लगातार मुलाकातें	असगर वजाहत	168
79	अजातशत्रु	कमल नयन पंकज	169-170
80	पत्रकारिता के प्रकाश स्तम्भ ...	मनोज पाराशर	171-172

संपर्क भाषा भारती के आगामी विशेषांक

जुलाई 2023

सुरेन्द्र सुकुमार (लब्धप्रतिष्ठ कथाकार एवं व्यंग्य कवि)

अगस्त 2023

डॉ धनंजय सिंह (लब्धप्रतिष्ठ नव-गीतकार)

पिता एक रिश्ता है तो जिम्मेदारी का नाम भी

अंतर्राष्ट्रीय पिता दिवस (18 जून) पर विशेष

माँ और पिता ये दोनों ही रिश्ते समाज में सर्वोपरि हैं। इन रिश्तों का कोई मोल नहीं है। ये सिर्फ एक शब्द भर नहीं हैं, बल्कि ऐसे रिश्ते हैं जिनके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। दुनिया के तमाम देशों में इन रिश्तों के लिए अलग-अलग शब्द हो सकते है, पर भाव-पक्ष में साम्यता है। भारतीय संस्कृति में माता-पिता को देवता कहा गया है-मातृदेवो भव, पितृदेवो भव। भगवान गणेश माता-पिता की परिक्रमा करके ही प्रथम पूज्य हो गये। श्रवण कुमार ने माता-पिता की सेवा में अपने कष्टों की जरा भी परवाह न की और अंत में सेवा करते हुए प्राण त्याग दिये। देवव्रत भीष्म ने पिता की खुशी के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और विश्वप्रसिद्ध हो गये। माता-पिता की सेवा के तमाम् दृष्टान्त हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो बच्चे अपने माता-पिता का आदर -सम्मान नहीं करते, वे जीवन में अपने लक्ष्य को कभी प्राप्त नहीं कर सकते।

फिलहाल यहाँ बात पिता की। भले ही पिता एक मां की तरह अपने कोख से बच्चे को जन्म न दे पाए, अपना दूध न पिला पाए, लेकिन सच तो यह है कि एक बच्चे के जीवन में पिता का सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। हम सभी को बचपन में अनुशासनप्रियता व सख्ती के चलते पिता क्रूर नजर आते हैं। लेकिन जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है और हम जीवन की कठिन डगर पर चलने की तैयारी करने लगते हैं, हमें अनुभव होता है कि पिता की वो डाँट और सख्ती हमारे भले के लिए ही थी। पापा बाहर से जितने सख्त दिखाई पड़ते हैं, अंदर से उतने ही कोमल हैं। वज्रादपि कठोर, बिल्कुल नारियल की तरह। उनकी हर एक सीख जब हमें अपनी मंजिल की ओर बढ़ने में मदद करती है, तब हमें मालूम पड़ता है कि पिता हमारे लिए कितने खास थे और हैं। कहते भी हैं कि मांँ का प्यार नजर आता है पर पिता

का प्यार नजर नहीं आता है क्योंकि पिता का प्यार इतना गहरा होता है कि उस प्यार को देखने के लिए नजरों की जरूरत नहीं होती है केवल दिल से ही पिता के प्यार को महसूस किया जा सकता है।

जिस घर में बच्चों की देखरेख करने के लिए अगर पिता नहीं है तो उन मासूम बच्चों के सारे लाड़-प्यार, दुलार, पिता की छांव सबकुछ अधूरा रह जाता है। ऐसा कहा जाता है कि अगर किसी के घर में मां नहीं है तो बच्चों की देखरेख ठीक से नहीं हो पाती। ठीक उसी तरह पिता के न होने पर भी बच्चों का वही हाल होता है। याद कीजिए बचपन के वो दिन जब मां बड़े प्यार से आपके सिर पर हाथ फेरकर आप से प्यार करने का अहसास कराती होंगी पर आपके पिता बस आपकी तरफ देखकर केवल यही पूछते होंगे कि, "मेरे बेटे को किसी चीज की जरूरत तो नहीं है ना।" सोचिए जरा पिता का यह सब पूछना, उनकी बातों और आंखों में कितना प्यार दिखाता है पर पिता कभी भी अपना प्यार जता नहीं पाता है। इस दुनिया जहान में बिना पिता के जीवनयापन करना बहुत मुश्किलों भरा काम है। बच्चों को हर उस जरूरत के लिए तरसना पड़ता है, जिसके वे हकदार होते हैं।

बचपन में जब कोई बच्चा चलना सीखता है तो सबसे पहले अपने पिता की उँगली थामता है। नन्हा सा बच्चा पिता की उँगली थामे और उसकी बाँहों में रहकर बहुत सुकून पाता है। बोलने के साथ ही बच्चे जिद करना शुरू कर देते हैं और पिता उनकी सभी जिदों को पूरा करते हैं। बचपन में चॉकलेट, खिलौने दिलाने से लेकर युवा होने तक बाइक, कार, लैपटॉप और उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजने तक सभी माँगों को पिता पूरा करते रहते हैं। कई बार तो ऐसा भी होता है कि अपनी जरूरतों को कम करके एवं अपनी अभिरुचियों को तिलांजलि देकर भी बच्चों के लिए पिता दिन-रात मेहनत करते हैं । अगर घर में पिता होते है तो तमाम जिम्मेदारियों से बच्चों को काफी हद तक मुक्ति मिल जाती है। फिर उन पर किसी तरह

का कोई अतिरिक्त दबाव नहीं रहता। वो अपनी मर्जी से घूम-फिर सकते हैं। अपने दोस्तों के साथ पार्टियों में शामिल हो सकते हैं और सारी दुनिया की फिक्र छोड़कर पिता के गोद में सिर रखकर आराम से सो सकते हैं।

पिता की उपस्थिति ही हमें काफी सुकून और आश्वस्ति देती है। हमें पिता से मिलता है एक सुरक्षा का वादा, एक प्यार का एहसास, जो बिना किसी शर्त से बंधा है। यह उम्मीद भी कि वो हमें कभी नहीं नकारेंगे। हमारी हर खुशी व हर जीत में ही नहीं बल्कि सबसे बुरे वक्त में भी संबल बनकर खड़े रहेंगे। पिता के लिए हमारी और परिवार की खुशी सर्वोपरि है, उनकी खुद की खुशी से भी ज्यादा। आज भी बचपन के वो दिन याद हैं कि कैसे हर साल पिताजी अपने कांधे पर बिठाकर रावण दहन दिखाने के लिए ले जाया करते थे। कितने सुनहरे दिन थे, जब पिताजी उंगली पकड़कर मेला घुमाया करते थे और हर जिद बड़ी आसानी से पूरी कर दिया करते थे। उनसे हम अपने दिल की हर छोटी बात भी बिना किसी हिचकिचाहट के साथ बाँट सकते थे।

जब बच्चे छोटे होते हैं तो उनसे अधिकतर यह पूछा जाता है कि उन्हें ज्यादा प्यार कौन करता है मम्मी या पापा तो अधिकांश बच्चे माँ का नाम ही लेते हैं। वो इसलिए क्योंकि वे माँ के साथ ही ज्यादा समय व्यतीत करते हैं और उन्हें पता ही नहीं होता है कि पिता का प्यार क्या होता है। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो माता-पिता दोनों के साथ एक जैसा समय व्यतीत करते हैं और उनसे पूछे जाने पर वो बच्चे यही कहते हैं कि पिता ज्यादा प्यार करते हैं और साथ ही उन बच्चों को ज्यादा खुश देखा गया जो पिता के साथ ज्यादा समय व्यतीत करते हैं।

एक शोध के मुताबिक आज भी दुनिया भर में बच्चे सर्वप्रथम आदर्श के रूप में अपने पिता को ही देखते हैं। माँ उनकी पहली पाठशाला है तो पिता पहला आदर्श। वे अपने पिता से ही सीखते हैं और उनके जैसा ही बनना चाहते हैं। इसलिए जीवन में जितना मां का महत्व होता है, उतना ही पिता का भी है। हमें यह नही भूलना चाहिए कि माता-पिता ने हमारे पालन-पोषण में कितने कष्ट सहे हैं। भूलकर भी कभी अपने माता-पिता का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। वे हमारे लिए सदैव आदरणीय हैं। उनका मान-सम्मान करना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

पिता एक रिश्ता है तो जिम्मेदारी का भी नाम है। अपने बड़े होते बच्चों की परवरिश के साथ-साथ उनके सुनहले भविष्य के लिए भी पिता सदैव सजग रहता है। इन सबके पीछे एक सुखद अहसास छिपा होता है कि बड़े होकर बच्चे उनका ध्यान रखेंगे और फिर

वे अपने अधूरे अपने सपने जी सकेंगे। पर कई बार ये सपने अधूरे ही रह जाते हैं और फिर शुरू होता है वह दौर, जब भागदौड़ भरी इस जिंदगी में बच्चों के पास अपने पिता के लिए समय नहीं मिल पाता है। पाश्चात्य देशों में इसी को ध्यान में रखकर 'फादर्स डे' या 'पितृ दिवस' मनाने की परंपरा का आरम्भ हुआ।

'फादर्स डे' पिताओं के सम्मान में एक व्यापक रूप से मनाया जाने वाला पर्व है, जिसमें पितृत्व, पितृत्व-बंधन तथा समाज में पिताओं के प्रभाव को समारोह पूर्वक मनाया जाता है। इस दिवस की शुरुआत बीसवीं सदी के प्रारंभ में पिता धर्म तथा पुरुषों द्वारा परवरिश का सम्मान करने के लिये मातृ दिवस के पूरक उत्सव के रूप में हुई। यह हमारे पूर्वजों की स्मृति और उनके सम्मान में भी मनाया जाता है। पितृ दिवस को विश्व में विभिन तारीखों पर मनाते है- जिसमें उपहार देना, पिता के लिये विशेष भोज एवं पारिवारिक गतिविधियाँ शामिल हैं। विश्व के अधिकतर देशों में इसे जून के तीसरे रविवार को मनाया जाता है। कुछ देशों में यह अलग-अलग दिनों में मनाया जाता है।

फादर्स डे मनाने के पीछे भी कई दिलचस्प किस्से हैं । एक मान्यता के अनुसार वास्तव में यह सबसे पहले पश्चिम वर्जीनिया के फेयरमोंट में 5 जुलाई, 1908 को मनाया गया था। 6 दिसम्बर, 1907 को मोनोंगाह, पश्चिम वर्जीनिया में एक खान दुर्घटना में मारे गए 210 पिताओं के सम्मान में इस विशेष दिवस का आयोजन श्रीमती ग्रेस गोल्डन क्लेटन ने किया था। 'प्रथम फादर्स डे चर्च' आज भी सेन्ट्रल यूनाइटेड मेथोडिस्ट चर्च के नाम से फेयरमोंट में मौजूद है।

फिलहाल प्रचलित लोकप्रिय अवधारणा के अनुसार माना जाता है कि फादर्स डे सर्वप्रथम 19 जून 1910 को वाशिंगटन में मनाया गया। इसके पीछे भी एक रोचक कहानी है- सोनेरा डोड की। सोनेरा डोड जब नन्ही सी थीं, तभी उनकी माँ का देहांत हो गया। पिता विलियम स्मार्ट ने सोनेरो के जीवन में माँ की कमी नहीं महसूस होने दी और उसे माँ का भी प्यार दिया। एक दिन यूँ ही सोनेरा के दिल में ख्याल आया कि आखिर एक दिन पिता के नाम क्यों नहीं हो सकता? इस तरह 19 जून 1910 को पहली बार फादर्स डे मनाया गया। 1924 में अमेरिकी राष्ट्रपति कैल्विन कोली ने फादर्स डे पर अपनी सहमति दी। फिर 1966 में राष्ट्रपति लिंडन जानसन ने जून के तीसरे रविवार को फादर्स डे मनाने की आधिकारिक घोषणा की। 1972 में अमेरिका में फादर्स डे पर स्थायी अवकाश घोषित हुआ। **फिलहाल पूरे विश्व में जून के तीसरे रविवार को फादर्स डे मनाया जाता है।**

भारत में भी धीरे-धीरे इसका प्रचार-प्रसार बढ़ता जा रहा है। इसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बढती भूमंडलीकरण की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जा सकता है और पिता के प्रति प्रेम के इजहार के परिप्रेक्ष्य में भी। पिता द्वारा अपने बच्चों के प्रति प्रेम का इजहार कई तरीकों से किया जाता है, पर बेटों-बेटियों द्वारा पिता के प्रति इजहार का यह दिवस अनूठा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि स्त्री-शक्ति का एहसास करने हेतु तमाम त्यौहार और दिन आरंभ हुए पर पितृसत्तात्मक समाज में फादर्स डे की कल्पना अजीब जरुर लगती है। पाश्चात्य देशों में जहाँ माता-पिता को ओल्ड एज हाउस में शिफ्ट कर देने की परंपरा है, वहाँ पर फादर्स-डे का औचित्य समझ में आता है। पर भारत में कहीं इसकी आड़ में लोग अपने दायित्वों से छुटकारा तो नहीं चाहते हैं, इस पर भी विचार करने की जरुरत है। जरुरत फादर्स-डे की अच्छी बातों को अपनाने की है, न कि पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में उसे अपनाने की जरुरत है।

कोई भी पिता अपने बच्चों से क्या चाहता है- प्यार का सच्चा इजहार, बच्चों का साथ, मान-सम्मान और यह आश्वस्ति कि बुजुर्ग होने पर बच्चे उनका भी पूरा ख्याल रखेंगे। बच्चों की हर सफलता के साथ पिता गौरवान्वित होता है। उन्हें लगता है कि जिन आदर्शों के लिए उन्होंने दिन-रात एक किया, बेटे-बेटियों ने उसे साकार किया। ऐसे में सिर्फ एक दिन 'फादर्स डे' मना कर अपने दायित्वों से इतिश्री नहीं किया जा सकता। माता-पिता ही दुनिया की सबसे गहरी छाया होते हैं, जिनके सहारे जीवन जीने का सौभाग्य हर किसी के बस में नहीं होता। इसलिए माता-पिता का आशीर्वाद लेकर सिर्फ एक दिन ही उन्हें याद ना करते हुए प्रतिदिन उन्हें नमन कर अपना जीवन सार्थक करना चाहिए।

कृष्ण कुमार यादव,

पोस्टमास्टर जनरल,

खुश हो जाइए.....

सोनम लववंशी

खुश हो जाइए, आप अभाव में हो, तनाव में हो, अवसाद ने आपको घेर रखा हो। फिर भी आप दिनभर हंसिए और खुशियां मनाइये, क्योंकि जब आप खुश होते हैं तो आप दूसरी बीमारियों से आसानी से लड़ सकते हैं और आपका दिमाग सही तरीके से काम करता है। अपने दैनिक जीवन में दया और ध्यान को शामिल करके, हम अधिक सकारात्मक और पूर्ण विकसित हो सकते हैं। आंकड़ों की गवाही है कि प्रसन्नता यानी ख़ुशी के मामले में हमारा देश लगातार पिछड़ता जा रहा है। 'विश्व प्रसन्नता दिवस' मनाने की शुरुआत 2013 में हुई थी। उस समय हम खुशियों की रैंक में 111 वें पायदान पर थे। 2022 में भारत 149 देशों की सूची में प्रसन्नता के स्तर में 136 वीं पायदान पर पहुंच गया। 25 स्थानों की गिरावट यह बताने के लिए काफ़ी है कि

खुशियों की राह में हम कितना पिछड़ गए। आश्चर्य की बात है कि पाकिस्तान, चीन और बांग्लादेश जैसे देशों से भी हमारी ख़ुशी निचले पायदान पर है। कहने को हम दुनिया की पांचवी बड़ी अर्थव्यवस्था हैं। दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी आबादी हमारे देश की है, पर खुशियों के पैमाने में हम बहुत निचले स्तर पर हैं।

भूटान ने 1972 में 'हैप्पीनेस इंडेक्स' का मॉडल दिया था! वहाँ जीडीपी के बजाए लोगों की खुशियों को देश की समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। जबकि, अभी तो वो फार्मूला ही नहीं बना जो लोगों की ख़ुशी मापने का मीटर हो! दुनिया में कई जगह लोगों के जीवन में खुशहाली लाने का काम हो रहा है। लेकिन, खुशहाली लाने के लिए सबसे पहले सरकार को अपनी जिम्मेदारियां निभाना होती है। वो सारे प्रयास करना होते

हैं, जिससे लोगों की व्यक्तिगत मुसीबतें ख़त्म हों और वे खुश हों! सरकारी गुदगुदी से कोई खुलकर कैसे हँस सकेगा! जिनके जीवन में तनाव, अभाव और हर वक़्त भविष्य की चिंता हो, उन्हें अंतर्मन की ख़ुशी कैसे दी जा सकती है! भूटान के अलावा वेनेज़ुएला, यूएई में भी ये प्रयोग हो चुके हैं।

जिंदगी के तौर तरीके जिस तरीके से बदल रहे हैं। उनसे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि हम तरक्की के नए आयाम भले गढ़ रहे हों, पर हमारे अंदर की इंसानियत पीछे छूट रही है। छोटी-छोटी बातों पर लोग मरने या मारने को तैयार होते जा रहें हैं। निराशावादी मानसिकता ने लोगों को इतना जकड़ लिया कि वे उससे बाहर निकलना ही नहीं चाहते! क्या वजह है कि हम अपनी संस्कृति को ही भूल बैठे है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मां कश्चित् दुख भाग भवः' की संस्कृति को मानने वाले हम यही कामना करते थे कि सभी सुखी हो, सभी निरोगी हों, सभी के साथ अच्छा हो किसी को दुःख न मिले। फिर ऐसी क्या वजह आ गई जो हम अपनों के ही दर्द की वजह बनते जा रहे हैं। रिश्तों की डोर इतनी नाज़ुक क्यों हो गई कि वो जरा से तनाव में दरक जाती है। हम बुलंदियों का आसमान छू रहे हैं, लेकिन मन को दो पल का सुकून नसीब नहीं हो रहा।

वास्तव में ख़ुशी को किसी परिभाषा में नहीं समेटा जा सकता है। हिन्दू शास्त्रों में भी खुशी को परम आनंद कहा गया है। छठवीं सदी के दार्शनिक और बुद्धिजीवी आदिशंकराचार्य ने कहा था 'अल्पकालिक वस्तुओं के प्रति उदासीनता और आंतरिक चेतना के साथ संबंध ही सच्ची प्रसन्नता है।' वहीं 350 ईसा पूर्व लिखे गए 'निकोमैचियन एथिक्स' में अरस्तू ने कहा था 'धन, सम्मान, स्वास्थ्य या दोस्ती के विपरीत, खुशी ही एकमात्र ऐसी चीज है, जो मनुष्य अपने लिए चाहता हैं।' अरस्तू ने तर्क दिया था कि अच्छा जीवन उत्कृष्ट तर्कसंगत गतिविधि का जीवन है। भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता में कहा ही है कि फल की आशा के बिना निरपेक्ष भाव से

किया गया कर्म ही सर्वोत्तम है। यह सच भी है कि जहां स्वार्थ होगा वहां छल कपट भी होगा। स्वार्थ से परे ही सच्चा सुख प्रसन्नता

> इतना ही नहीं शौचालय हर परिवार की बुनियादी जरूरत है, लेकिन विडंबना देखिए टॉयलेट एक प्रेम कथा जैसी फ़िल्म के आने के पांच-छह साल बाद भी इसे लेकर ग्रामीणों क्षेत्रों में जागरूकता का अभाव है। गांवों में अब तक शौच के लिए बाहर जाने को स्वास्थ्य के लिए बेहतर माना जाता है।

की राह सुगम बनाता है।

हमारी संस्कृति ने दुनिया को शांति का पाठ पढ़ाया। विश्व को योग, ध्यान और अध्यात्म सिखाया। फिर देश किस राह पर चल पड़ा है? हमारी खुशी का स्तर गिरता क्यों जा रहा है? क्या सिर्फ भोग विलास ही सुखी जीवन का पैमाना बन गया है? आधुनिकता की चकाचौंध में इंसान अंधा हो गया है। इसलिए वह अपने सामाजिक मूल्यों का पतन करने से भी पीछे नहीं हटता। बाजारवाद की प्रवृत्ति में इंसान की इंसानियत गुम हो रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक भारत दुनिया में सबसे अवसादग्रस्त लोगों का देश बन गया है।

हमने घर तो मजबूत बना लिए पर रिश्ते की डोर बहुत ही कमजोर होती जा रही है। जहां कभी एक छत के नीचे पूरा परिवार ख़ुशी मनाता था। आज हम अपने ही कमरे में कैद होकर रह गए है! आज दुनिया 'ग्लोबल विलेज बनती जा रही है। चंद पलों में हम मीलों का सफर तय करने में सक्षम हो गए है, सूचना के बड़े बड़े माध्यम बनाने में सफलता हासिल कर ली है, लेकिन दिलों में दर्द की गहरी खाई बना बैठे हैं। आज हमें जरूरत है कि हम अपनी खुशी के लिए किसी और पर निर्भर न रहें। अपनी ज़िंदगी के निर्माता स्वयं

बने। जिस दिन हम सही गलत का निर्णय करने में सक्षम हो जाएंगे। भौतिकवाद से परे मानवता की राह पकड़ लेंगे तो उससे अच्छी ख़ुशी कोई और नहीं होगी।

लगता है 'ख़ुशी' और 'सुविधा' के फर्क को ठीक से नहीं समझा गया! 'ख़ुशी' किसी को दी नहीं जा सकती, ये अनुभूति है जो अंदर से उपजती है! उसे खोजना भर होता है। लोगों के अभाव की पूर्ति कर देने से वो व्यक्ति सुखी तो हो सकता है, पर खुश नहीं! ये भी कहा जा सकता है कि ख़ुशी कभी खो नहीं सकती, इसलिए उसे पाया भी नहीं जा सकता! वह तो मौजूद है, उसे केवल एहसास किया जाता है। कहा ये भी जाता है कि जो आनंद फकीरी में है, वो अमीरी में कहाँ! धन, दौलत, पद या प्रतिष्ठा से आनंद नहीं आता, बल्कि सकारात्मक सोच जीवन को खुशियों से भरता है। भौतिक समृद्धि महज सुविधा है, ख़ुशी नहीं। इससे कभी आंतरिक खुशी और शांति नहीं मिलती। यदि हम ख़ुशी चाहते हैं, तो हमें ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा, जिससे लोगों को वास्तविक आनंद की अनुभूति हो।

जब तक निजी जिंदगी में निश्चिंतता का आभास नहीं होगा, खुशियां दस्तक नहीं दे सकती। साथ में मॉर्निंग वॉक करने वाले लोग अपना तनाव दूर करने के लिए कई बार साथ खड़े होकर बेवजह हंस लेते हैं! लॉफिंग क्लब भी इसी मकसद से बनाए जाते हैं, पर उससे वास्तविक ख़ुशी किसी को नहीं मिलती। चुटकुले सुनकर भी हंसी आ जाती है, गुदगुदी भी हंसाती है! पर, ये सब कहीं से भी सच्ची ख़ुशी नहीं होती! क्योंकि, ये क्षणिक है। जिन लोगों के जीवन में तनाव है, अभाव है और हर वक़्त चिंता है। उनको कोई ख़ुशी आनंदित नहीं कर सकती! खुशहाली का समृद्धता से भी कोई वास्ता नहीं होता! कुछ लोग तो अभाव को अपनी नियति समझकर भी खुश रहते हैं! उनके लिए कोई सुविधाएं मायने नहीं रखती!

आश्वासन

उसके प्रवेश से
शिथिल हुआ
तंतुओं का तनाव
शिराएं भग्न होते - होते
बच गईं
उफनते आक्रोश का खदकना
बैठ गया तले पर
ढक्कन से
प्रयासों के गिरते तने को
थुंबी लग गई
अध्यवसाय की प्रत्यंचा
दम साधे तनी रही
जब धरा उसने
कंधे पर हाथ
पुनश्च प्रतिध्वनित हुआ
'देर कभी नहीं होती'
यद्यपि आश्वासन की
दृष्टि में थी
हेयपूर्ण स्मिता
कितनी निर्द्वंद्व हुई
मेरी कातरता
साक्षी समय होगा.

अर्चना गौतम मीरा

ऑफलाइन प्यार (लघुकथा)

बहुत दिनों बाद मिस्टर डिसूजा अपनी पत्नी के साथ राधेश्याम शुक्ला से मिलने उनके घर आए थे | दोनो अच्छे पड़ोसी थे |शुक्ला ने उनको डिनर के लिए रोक लिया था ,कि वापस डिसूजा घर जाकर खाने के लिए झंझट में पड़ेंगे |

तभी डिसूजा के बेटे का वीडियो कॉल आ गया, उनके दोनों बेटे विदेश में थे ,दोनों के लिए डिसूजा गर्व से बताते थे कि बेटे विदेश में जॉब करते हैं| वीडियो कॉल पर डिसूजा के बेटों ने शुक्ला से भी बात की,शुक्ला के दोनों पैर सोफे के सामने रखी कुर्सी पर फैले हुए थे और उनका बड़ा बेटा शुक्ला जी के पैरों को दबा रहा था, छोटा बेटा कंधे दबा रहा था|

इधर डिसूजा सोच रहे थे कि वह अपने पैरों के दर्द से कितना परेशान रहते है,रुपए देने पर भी बड़ी मुश्किल से नौकर आता था| मालिश के लिए| इतने बड़े मकान में दोनों पति-पत्नी बेचैन से मंडराया करते थे |उनके बेटे विदेश से वीडियो कॉल करके ऑनलाइन प्यार जता देते थे|

राधेश्याम के बेटे ऑफलाइन प्यार करते हैं| कितना सुकून था ,राधेश्याम के चेहरे पर जब बेटा कंधे दबा रहा था |
काश---|उन्होंने बेटों को इंडिया में रखा होता |

इन्दु सिन्ह "इन्दु"

वेदना...

मनीषा जोशी मनी

कहानी

रात के एक बजे थे जेल की सलाखों के पीछे चहलकदमी करते हुए एक शख़्स के कदमों की परछाई कभी लम्बी तो कभी बौनी हो जाती थी उस शख़्स की चाल में बेचैनी व परेशानी साफ झलक रही थी वो कोई आम क़ैदी नही था हत्या का आरोपी था .कल सुबह दस बजे उसको फांसी होनी थी. उसकी ये बैचैनी तो स्वभाविक थी ..पर क्या वह सच मे इस फांसी का हक़दार है ये प्रश्न उसे भी रह रहकर विचलित कर रहा था. जिसके कारण वह इस तरह चहल कदमी कर रहा था.. मृत्यु से वह नहीं डरता वह तो स्वंम इस दुनिया के व्यवहार से भर गया तभी तो खुद जेल मे आ गया उसेअपने अतीत के सभी बातें स्मरण हो रही थी. अपना बचपन याद आ रहा था जब उसके पिता ने उसकी मां के चरित्र पर प्रश्न किये उसी संशय के कारण उसने मां, बेटे दोनों को घर से निकाल दिया उसकी मां जो उसका एकमात्र सहारा थी जिस पर गांव के मुखिया की कलुषित दृष्टि रहती थी उसी के कारण उसके पति ने उसे घर से निकाल दिया मुखियाँ की कामना पूरी नहीं हुई तो उसने उसके साथ दुष्कर्म कर उसकी हत्या करा दी .जगन नौ वर्ष की आयु में बेसहारा हो गया यूं कहे अनाथ हो गया गांव वालों ने उसे जलंधर पुकारना शुरू कर दिया बेचारा नन्हा बालक कहां जाता कई बार उसने अपने पिता का द्वार खटखटाया मगर वह न पिघला. गांव के एक गरीब परिवार ने उसे सहारा दिया परन्तु जीविका के आभाव में वह अपने परिवार का पालन बहुत कठिनता से कर पाते थे इसलिए पेट भरने के लिये छोटे से बच्चे को जो भी काम मिला उसने किया,कभी खेत में, कभी कोयले की खदान में तो कभी नदी पर पत्थर ढोने का काम करते करते वह बीस वर्ष का गठीला नौजवान हो गया .इन बीते बरसों ने उसे भी पत्थर के समान बना दिया मगर उसकी आँखें मे पीड़ा साफ दिखाई देती थी .. उसे अपनी मां की चीखें जब भी याद आती वह पागल सा हो जाता वह. मुखिया के सेवको से कई बार लड़ आता .उसके मन में अपनी माँ को ईंसाफ दिलाने के अलावा कोई ख्वाहिश न थी वह सच में इस कलयुग का जलंधर था जिसपे हर किसी नें अत्याचार किया न पिता ने अपनाया न मां साथ रह पाई समाज के ताने यतनायें ही उसके भाग्य आई .प्रतिदिन सवप्न में उसे उसकी माँ रोती कराहती खून से लथपथ दिखाई देती थी जैसे वो याचना करती हो अपनी मुक्ति के लिए ..एक दिन उसके अंदर का शोला ज्वालामुखी बन फट गया मौका पाकर उसने गांव के मुखियां की हत्या कर दी ..उस दिन उसे लगा जैसे उसकी मां की आत्मा को मुक्ति मिल गई है.. उस दिन के बाद वह उसके सपने में नहीं आई ...पुलिस जगन को कई माह ढूढती रही वह न मिला वह इतना बलवान व समर्थ था चाहता तो कभी पुलिस के हाथ न आता मगर पुलिस ने उसके सर पर ज़िदा या मुर्दा पकड़वाने का तीस हजार का इनाम रखा .. मां की मृत्यु के बाद जिस परिवार ने उसे सहारा दिया उस परिवार की मदद करने के लिए जिद्द कर उसने स्वंय उनको अपना ठिकाना बताने को बोला जिससे ईनाम की रक़म से वह लोगों अपनी बिटिया का विवाह कर पाये जसे वह अपनी बहन मानता है..अंत में हार कर उन्होंने उसकी बात मान ली..और पुलिस को उसकी सूचना दे दी..... सुबह के 4:00 बज गए उसने आवाज दी कोई है मुझे स्नान करना है वह रोज सुबह जल्दी उठकर के स्नान करता था .नित्य क्रिया व स्नान से निपटने के पश्चात वह महादेव की पूजा किया करता उसकी ओम की ध्वनि से जेल का वातावरण पवित्र हो जाता आज भी उसने वही सब किया ..और कुछ सोचने के पश्चात पद्मासन लगाकर सांसो की गति को नियंत्रित करने लगा और धीरे-धीरे अपनी सांसो पर पूर्ण नियंत्रण पा लिया आंखों को बंद कर ध्यान मे लिन हो गया .. नौ बजे जब फांसी के लिए उसका दरवाजा खोला गया तो सभी देखकर दंग रह गए पद्मासन की अवस्था में उसका शरीर दीवाल से टिका हुआ था शरीर में कोई हलचल नहीं थी सासें पूर्ण रूप से रुक चुकी थी देह ठंडी हो चुकी थी वेदना से भरे हुए चेहरे मे आज बहुत शांति थी. और अधरों पर हल्की सी मुस्कान.

अतीत का एक सफर

विनोद क्वात्रा

अतीत जीवन के पृष्ठों पर समय गुजरने के साथ साथ भविष्य के लिए सनद हो जाता है। कभी जब वर्तमान में याद आ जाता है तो कहानी बन जाती है। ऐसी ही एक सुबह राजाराम चैम्बूर आश्रम से मुम्बई सेन्ट्रल स्टेशन से पश्चिम एक्सप्रेस गाड़ी पकड़ने के लिए टैक्सी पर सवार था। राजाराम अकेला नहीं था।आश्रम का एक सेवक उस को गाड़ी पर बैठाने साथ जा रहा था। टैक्सी आर के स्टूडियोज के सामने से गुजर रही थी। राज कपूर जो अपने जमाने का बम्बई फिल्म इंडस्ट्रीज का प्रतिष्ठित कलाकार था। बीमारी के इलाज के लिए दिल्ली एम्स में भरती रहा और यहीं एम्स में ही सदा के लिए उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई। अतीत के दृश्यों के साथ साथ विचार भी राजाराम के हृदय में प्रेषित हो रहे थे क्यों कि वह दिल्ली ही जा रहा था। टैक्सी चालक जान बूझ कर बिल बढ़ाने के लिए लम्बे रास्ते से लिए जा रहा था। दोनों सब देखकर भी चुप थे। सब कार्यो का हिसाब रखती है वह तीसरीआँख। तीसरी श्रेणी के स्लीपर में राजाराम की सीट बुक थी। गाड़ी प्लेटफार्म पर अभी लगी थी मैं भी अपनी सीट ढूँढ कर बैठ गया। सामने की सीट पर गाड़ी चलने से थोड़ी देर पहले एक महिला जो महिला कम युवती ज्यादा लगती थी, आकर बैठ गई शायद वह उस की सीट थी। 11:40 की गाड़ी, समय से चल पड़ी।

आश्रम का सेवादार गाड़ी में बैठाकर आश्रम वापस चला गया। आस पास मुसाफिरों के बीच खुद को अकेला महसूस कर रहा था। सफर लम्बा था दिल्ली तक चौवीस घंटे से ज्यादा का समय अकेले बिताना था, मगर वह अकेला कहाँ था! सारी गाड़ी के मुसाफिर साथ थे। आश्रम के सेवादारों ने दोपहर और रात्रि का खाना राजाराम को बाँध दिया था। जनवरी का महीना था। मुम्बई का मौसम 12 महीने लगभग एक जैसा रहता है। दिल्ली पहुँचते शरीर गर्म कपड़ों से लद जाता है। एक ना एक दिन शरीर को स्वीकार करना पड़ता है कि वह बूढ़ा हो रहा है। वैसे भी राजाराम साठ साल की दहलीज पार कर चुका था। राजाराम की नीचे की सीट के ऊपर वाली आमने सामने की चारों सीटों पर पुरुष थे। गैलरी के साथ वाली दोनों सीटों पर भी पुरूष ही थे। गाड़ी महाराष्ट्रा की सीमा से निकलकर

गुजरात की सीमा में आ गई थी लगभग दो बज गये, दोपहर के खाने का समय, राजाराम ने अपना खाना निकाल कर खोला, आलू पूड़ी और आम का अचार!

राजाराम ने मन ही मन कहा, "मेरी पसन्द का, वाह!"

औपचारिकता के लिए आस पास बैठे लोगों से आग्रह किया, "आइये, खाना खाइये।" सब ने हाथ जोड़ कुछ न कुछ कहते रहे, राजाराम की मुस्कुराहट ही उनके लिए उत्तर था। खाना खाने के बाद बूढ़ा शरीर आराम चाहने लगा। पास सीट पर बैठे लोगों से आग्रह किया, वह भी अपनी सीट पर चले गये। राजाराम सीट पर लेटा ऊँगता रहा, पर नींद सब को कहाँ आती है सफर में। गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकी हुई थी। चाय बेचने वालों की आवाज आ रही थीं। "ओ भाई चाय, एक चाय देना।" राजाराम ने खिड़की में से चाय वाले को कहा। सामने बैठी युवती से पूछा, "आप चाय लेंगीं?"

सकारात्मक उत्तर से, दो चाय को बोल दिया। बीस का नोट हाथ में था दे दिया। युवती 10 रुपये देने लगी "मैने दे दिये बेटा, आप रख लो।"

"अंकल जी आप ले लो।" कोई बात नहीं बेटी रख लो।

शायद बेटी कहने से वह प्रभावित हुई और राजाराम के आग्रह को मान लिया। दोनों चाय पीने लगे। प्रसाद में मिले बिस्कुट का

पैकेट खोला सब को आस पास बैठे सफर के साथियों को प्रसाद खिलाया। राजाराम ने मन में विचार कौंधा, शायद यह लड़की मूल रूप से मुम्बई की निवासी नहीं है। एक क्षण में विचार आया गया हो गया।

राजाराम आश्रम में दो महीने लंगर की सेवा में सेवारत रहा। घर वालों से सम्पर्क के लिए बेटे ने अपना माइक्रोमैक्स का फोन राजाराम को दे दिया था। इस में उसने अपनी आवाज में बहुत सारी लगभग सारी अपनी लिखी कवितायें रिकार्ड कर ली थीं। कविता लिखना उसका शौक था। कभी अकेला होता कान में ईयर फोन लगाकर घंटो सुनता रहता। खुद से खुद को सुनकर अकेलापन महसूस नहीं होता था। शाम रात्रि की ओर कदम बढ़ा रही थी राजाराम कान में ईयर फोन लगाकर अधलेटा अपनी रचनायें सुनने में मस्त था। हिलने जुलने से छोटा तौलिया सीट से नीचे गिर गया। सामने बैठी युवती ने उठाकर दिया। उसको राजाराम ने धन्यवाद कहा और पूछा, "आप कहाँ जा रही हो बेटी?"

युवती ने कहाँ, "दिल्ली!" "दिल्ली कहाँ पर?" राजाराम ने पूछा। "दिल्ली से मुझे दूसरी लोकल गाड़ी पकड़नी है।" युवती ने बताया, "मैं अपने घर जा रही हूँ किसी खास काम से। मुम्बई में टीचर हूँ और मेरे पति भी टीचर हैं।मेरे दो बच्चे हैं। वह इस समय मुम्बई में हैं।" बातों बातों में पता लगा कि उसने हिन्दी में एमए पीएचडी की है। उसने बताया कि उसका नाम संगीता है। कोई स्टेशन आया, गाड़ी रुकी और उस के साथ हमारी बातें भी। मैं ने इयर फोन कानों में लगा लिये।आत्मीयता आस पास के मुसाफिरों से धीरे धीरे बड़ रही थी। ज्यादातर एक दूसरे से औपचारिकतायें त्याग सहज हो रहे थे। "अंकल जी आप क्या सुन रहे हैं?" संगीता के पूछ ही लिया।

"कवितायें!" राजाराम ने कहा। "लो बेटी आप भी सुनो।" यह कहते कहते इयर फोन संगीता को दे दिये मोबाइल राजाराम के हाथ में रहा। ईयर फोन कान में लगा कविताओं में डूब गई। जब राजाराम का हाथ मोबाइल पकड़ कर थक गया तो संगीता को थमा दिया। थोड़ी देर बाद विस्मय से बोली, "अरे! यह आप की आवाज है। इतना भावपूर्ण हृदय स्पर्शी लिखते हैं आप!" कोई अजनबी थोड़ी देर की पहचान में इतनी तारीफ करे, मन ही मन राजाराम गदगद था पर हाव भाव से बिल्कुल नार्मल। आसपास कुल आठ सफर के साथी अलग अलग प्रान्तों के बैठे थे। रात के खाने तक एक दूसरे से घुलमिल गये और खाने में भी एक आपस में शेयर करने लगे। सफर में कहते सुनते एक दूसरे के साथ सहज होने से सफर और भी आसान हो जाता है। जैसे जैसे मुम्बई दूर हो रहा था जनवरी की दिल्ली की ठंडक पास आकर कम्बल ओढ़ने और गर्म कपड़े पहनने को कह रही थी। रात का खाना खाकर सब सोने की तैयारी करने लगे। खिड़कियाँ बन्द कर दीं ठंडी हवा के डर से। गाड़ी चलती रही रात भी अपनी रफ्तार से ढलती रही। सुबह का पता चाय चाय की आवाज से चला। सुबह के लगभग छे बजे होंगे। सूरज सर्दी और कोहरे की वजह से देर से दिखाई देता है पर अब भी दिल्ली छे सात घंटे दूर थी। उस के बाद हम सब अलग हो जायेंगे पता नहीं दुबारा मिलन होगा भी कि नहीं।सूरज कोहरे की चादर फाड़ता हुआ अपनी रश्मियों को बिखेरने की कोशिश में व्यस्त था। ग्वालियर के स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होने वाली है उतरने वालों की हलचल के बीच चाय चाय की आवाज आने लगी तभी ऊपर बैठे लड़के ने भुझे चाय वाले को बुलाने को कहा, "अंकल जी दो चाय ले लो मेरे और अपने लिए।" पैसे देने लगा। राजाराम ने मना कर दिया। हमारे ग्रुप में अब चार लोग ही रह गये, जिन्हें दिल्ली उतरना था। तीन को नई दिल्ली, जो गाड़ी का अन्तिम पड़ाव था। उम्र की सफेदी का लिहाज करते हुये राजाराम को अंकल जी कहकर पूरा सम्मान चारों दे रहे थे। संगीता बेटी राजाराम की रचनाओं से बहुत प्रभावित थी। पढ़ी लिखी होते हुये अंहकार रहित थी। बहुत सादगी पसन्द और संस्कारी लग रही थी। जो लोग रह गए थे, वह इतने घुलमिल गये थे, जैसे बरसों की पुरानी मुलाकात हो। औपचारिकताएं बहुत पीछे छूट गई थीं। नई दिल्ली से पहले निजामुद्दीन के स्टेशन पर एक साथी उतर गया, जवान था शादी शुदा। उतरने से पहले सब को प्रणाम किया राजाराम के पास आया और चरण स्पर्श किये बोला मैं आप से बहुत प्रभावित हूँ। उस के चेहरे पर बिछड़ने की उदासी के भाव छा गये। राजाराम ने भी वात्सल्य प्रेम के वशीभूत आलिंगन बद्ध कर गले से लगाकर आशीर्वाद दिया। यहाँ बस दो मिनट गाड़ी रुकती है। प्लेटफार्म पर उतरकर गाड़ी के चलने तक खिड़की के पास खड़ा रहा, हाथ हिलाकर अभिवादन करता हुआ। गाड़ी का आखिरी पड़ाव नई दिल्ली का स्टेशन आ रहा था। संगीता बेटी जो राजाराम की कविताओं, मगर उस से भी ज्यादा राजाराम के स्वभाव और आचरण से प्रभावित थी। राजाराम के पास पाँच नग थे। तीनों ने अपने सामान के साथ उस का भी सामान प्लेटफार्म पर उतारा। राजाराम संगीता और दोनों लड़के प्लेटफार्म पर खड़े एक दूसरे से विदा होने की औपचारिकतायें अभिवादन कर निभा रहे थे। दोनों लड़के चेहरे पर मुस्कुराहट लाते हुये राजाराम को प्रणाम किये पैर छुये। चेहरों पर कुछ घंटों की मिलने की खुशी की आत्मीयता के भाव चेहरों पर झलक रहे थे। हम प्लेटफार्म पर खड़े थे सब की आँखों में बिछड़न की उदासी थी। संगीता न जाने कब झुक गयी राजाराम के पैर छूने को। राजाराम को जब संगीता के हाथों का स्पर्श महसूस हुआ तो चौंका और सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुये कहा, "बेटी! बेटियाँ हमारे यहां पाँव नहीं छूतीं।"

यह सुनकर संगीता की आँखें भर आईं नम आँखो को रुमाल में समेट लिया। राजाराम को ऐसा लगा कि शायद संगीता पिता के प्रेम से वंचित रही है। "पापा!", राजाराम के बेटे ने राजाराम को देख लिया। लेने आया था। पास आकर चरण स्पर्श किया सामान उठा लिया घर जाने के लिए। हम चारों एक दूसरे की सूनी आँखों में अतीत को ढूँढ रहे थे जो अभी अभी खो गया था।

आकांक्षा यादव

पर्यावरण संरक्षण के प्रति सचेतना जरूरी

विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून) पर विशेष

मनुष्य और पर्यावरण का संबंध काफी पुरानी और गहरा है। पर्यावरण के बिना जीवन ही संभव नहीं है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित पंच तत्व क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। ये तत्व आवश्यकतानुसार समस्त जीव के उपयोग-उपभोग में अपनी भूमिका निभाते हैं। मानव अपनी आकांक्षाओं के लिए इन तत्वों पर निर्भर हैं। इनका एक निश्चित तारतम्य जीवन को नए प्रतिमान देता है, पर जब किन्हीं कारणों से इनका संतुलन बिगड़ता है तो पर्यावरण-संतुलन भी बिगड़ता है, जो अंततः न सिर्फ मानव बल्कि सभ्यताओं को प्रभावित करता है। ऐसे में जरूरत है कि इनका दोहन नहीं बल्कि सतत् विकास द्वारा सवंदेनशील उपयोग किया जाए।

पर्यावरण के प्रति बढ़ती असंवेदनशीलता आज भयावह परिणाम उत्पन्न कर रही है। एक तरफ बढ़ती जनसंख्या, उस पर से प्रकृति का अनुचित दोहन, वाकई यह संक्रमणकालीन दौर है। यदि हम अभी भी नहीं चेते तो सभ्यताओं के अवसान में देरी नहीं लगेगी। वैश्विक स्तर पर देखें तो धरती का मात्र 31 प्रतिशत क्षेत्र वनों से आच्छादित है, जबकि 36 करोड़ एकड़ वन क्षेत्र प्रतिवर्ष घट रहा है। नतीजन 1141 प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। वहीं जंगलों पर निर्भर 1.6 अरब लोगों की आजीविका खतरे में है। बढ़ते पर्यावरण-प्रदूषण ने जल-थल-नभ किसी को भी नहीं छोड़ा है। पृथ्वी का तीन चौथाई हिस्सा जलमग्न है, जिसमें करीब 0.3 फीसदी में से भी मात्र 30 फीसदी जल ही पीने योग्य बचा है। तभी तो 76.8 करोड़ लोगों को दुनिया में पीने के लिए साफ पानी तक नहीं मिलता। नतीजन, दुनिया में प्रतिवर्ष 18 लाख बच्चे पानी की कमी और बीमारियों के कारण दम तोड़ देते हैं। वहीं प्रतिवर्ष 22 लाख लोग जलजनित बीमारियां के चलते मौके के मुँह में समा जाते हैं। संयुक्त

राष्ट्र के मुताबिक 2025 तक 2.9 अरब अतिरिक्त लोग जल आपूर्ति के संकट में इजाफा ही करेंगे। यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में बात करें तो जिस गंगा नदी को जीवनदायिनी माना जाता है, उसमें 1 अरब लीटर सीवेज मिलता है। ऐसे में स्वाभाविक है कि गंगा में बैक्टीरिया का स्तर 2800 गुना बढ़ गया है। इसी प्रकार यमुना नदी की बात करें तो अकेले राजधानी दिल्ली का 57 फीसदी कचरा यमुना में डाला जाता है। यहाँ 3053 मिलियन लीटर सीवेज पानी यमुना में हर रोज बहाया जाता है। कहना गलत न होगा कि 80 फीसदी यमुना दिल्ली में ही प्रदूषित होती है।

सिर्फ जल ही क्यों, जिस वायु में हम साँस लेते हैं, वह भी प्रदूषण से ग्रस्त है। दुनियाभर में युद्ध और आतंकवाद, एचआईवी-एड्स जैसी गंभीर बीमारियों, धूम्रपान या शराब के सेवन से जीवन को जितना खतरा है, उससे कई गुना खतरा वायु प्रदूषण से है। नजीर के तौर पर, स्मोकिंग से दुनियाभर में लोगों की औसत आयु करीब 1.8 साल घट जाती है। वहीं, शराब के सेवन से 7 महीना, खराब पानी से भी 7 महीना, एचआईवी एड्स से 4 महीना, मलेरिया से 3 महीना, युद्ध और आतंकवाद से सिर्फ 18 दिन जीवन प्रत्याशा घटती है। पिछले 5 सालों में वायु में 8-10 फीसदी कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ी है, नतीजन 5 करोड़ बच्चे हर समय वायु प्रदूषण से बीमार होते हैं। अकेले एशिया में 53 लाख लोग प्रदूषित वायु के चलते मौत के मुँह में चले जाते हैं।दुनिया की करीब 82 प्रतिशत आबादी यानी 6.3 अरब लोग ऐसे क्षेत्र में रहते हैं, जहां हवा की गुणवत्ता विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों से खराब है यानी प्रदूषित है। शिकागो यूनिवर्सिटी की ताजा एयर क्वॉलिटी लाइफ इंडेक्स रिपोर्ट में दावा किया गया है कि अगर भारत में वायु प्रदूषण का स्तर 2019 जैसा ही बना रहा तो लोगों की जीवन प्रत्याशा 5.9 साल कम हो जाएगी। दिल्ली, कोलकाता समेत गंगा के मैदानी इलाकों में प्रदूषण की वजह से देश की 40 प्रतिशत आबादी की उम्र तो 9 साल तक घट जाएगी। अगर भारत हवा की गुणवत्ता को विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों के अनुरूप करने में सफल होता है तो लोगों की औसत उम्र 5.9 साल बढ़ जाएगी।

एक तरफ बढ़ती जनसंख्या, दूसरी तरफ बढ़ता पर्यावरण-प्रदूषण ऐसे में उनके बीच परस्पर संतुलन की शीघ्र आवश्यकता है। मानव और पर्यावरण के मध्य असंतुलन से जहाँ अन्य जीव-जंतुओं व वनस्पतियों की प्रजातियाँ नष्ट होने के कगार पर हैं, वहीं ग्रीन हाउस के बढ़ते उत्सर्जन व ग्लोबल वार्मिंग से स्वच्छ साँस तक लेना मुश्किल हो गया है। मानवीय जीवन में बढ़ती भौतिकता एवं प्रकृति व पर्यावरण के प्रति बढ़ती उदासीनता, लापरवाही, बेपरवाही व दोहन ने विनाश-लीला का तांडव आरंभ कर दिया है। पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के चलते जलवायु-परिवर्तन भी हो रहा है। एक वैज्ञानिक रिपोर्ट के अनुसार-जलवायु परिवर्तन से हर वर्ष लगभग तीन लाख लोग

मर रहे हैं, जिनमें से अधिकतर विकासशील देशों के हैं। ग्लोबल ह्यूमैनिटेरियन फोरम की एक रिपोर्ट के अनुसार-''1906 से 2005 के मध्यम पृथ्वी का तापमान 0.74 डिग्री सेल्सयिस बढ़ा है और हाल के वर्षों में इसमें उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है। वर्ष 2100 तक यह तापमान न्यूनतम दो डिग्री सेल्सयिस बढ़ने के आसार हैं।''

संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक 2030 तक वैश्विक ऊर्जा की जरूरत में 60 फीसदी की वृद्धि होगी। ऐसे में निर्वहनीय विकास के लिए तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है। प्राकृतिक संसाधनों के सम्यक प्रबंधन और इनका उचित इस्तेमाल करने को रिसाइकिल, रिड्यूस और रियूज का हमेशा ध्यान रखना होगा। कोयला और पेट्रोल के अधिकाधिक उपयोग से वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है, जिससे पृथ्वी के औसत तापमान में भी वृद्धि हो रही है। वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी पर संतुलित तापमान के लिए वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा 0.3 फीसदी रहना जरूरी है। इसमें असंतुलन भयावह स्थिति पैदा कर सकता है। ओजोन परत जहाँ पराबैंगनी किरणों से धरा की रक्षा करता है, वहीं नित्-प्रतिदिन बढ़ते एयर कंडीशनर व रेफ्रीजरेटर एवं प्लास्टिक उद्योग में उपयोग किए जाने वाले क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उत्सर्जन से ओजोन परत को नुकसान पहुँच रहा है। इससे जहाँ पराबैंगनी किरणों के प्रवाह के चलते त्वचा कैंसर जैसी बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं, वहीं ग्लेशियरों के पिघलने के चलते तमाम दीपों व देशों पर खतरा मंडरा रहा है। आर्कटिक क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन पर प्रकाशित एक अध्ययन रिपोर्ट में दावा किया गया है कि आर्कटिक क्षेत्र में विश्व के अन्य भागों की अपेक्षा तापमान-वृद्धि दुगनी गति से हो रहा है। वस्तुतः आर्कटिक क्षेत्र में बर्फीली सतहें अधिक कारगर ढंग से सूर्य-उष्मा का परावर्तन करती हैं, पर अब तापमान बढ़ने एवं हिमखंडों के तीव्रता से पिघलने के कारण अनाच्छादित भूक्षेत्र व सागर तल द्वारा अपेक्षाकृत अधिक ऊष्मा ग्रहण की जा रही है, जिससे यह क्षेत्र अत्यंत तीव्र गति से गर्म होता जा रहा है। ऐसे में महासागरों का जलस्तर बढ़ने से तमाम द्वीपों व देशों के विलुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। इससे जहाँ ँ जनसंख्या पलायन की समस्या उत्पन्न हुई है, वहीं समुद्री जीव-जंतुओं के विलुप्त होने की संभावनाएं भी उत्पन्न हो गई हैं।

वस्तुतः जब हम पर्यावरण की बात करते हैं तो यह एक व्यापक शब्द है, जिसमें पेड़-पौधे, जल, नदियाँ, पहाड़ इत्यादि से लेकर हमारा समूचा परिवेश सम्मिलित है। मानव जीवन प्रकृति पर आश्रित है। प्रकृति एक विराट शरीर की तरह है। जीव-जन्तु, वृक्ष -वनस्पति, नदी-पहाड़ आदि उसके अंग-प्रत्यंग हैं। इनके परस्पर सहयोग से यह वृहद

इसमें असंतुलन भयावह स्थिति पैदा कर सकता है। ओजोन परत जहाँ पराबैंगनी किरणों से धरा की रक्षा करता है, वहीं नित्-प्रतिदिन बढ़ते एयर कंडीशनर व रेफ्रीजरेटर एवं प्लास्टिक उद्योग में उपयोग किए जाने वाले क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उत्सर्जन से ओजोन परत को नुकसान पहुँच रहा है।

शरीर स्वस्थ और सन्तुलित है। जिस प्रकार मानव शरीर के किसी एक अंग में खराबी आ जाने से पूरे शरीर के कार्य में बाधा पड़ती है, उसी प्रकार प्रकृति के घटकों से छेड़छाड़ करने पर प्रकृति की व्यवस्था भी गड़बड़ा जाती है। हमारी हर गतिविधि इनसे प्रभावित होती है और इन्हें प्रभावित करती भी है। भारतीय मानस वृक्षों में देवताओं का वास मानता है। इतना ही नहीं वह वृक्षों को देवशक्तियों के प्रतीक और स्वरूप के रूप में भी देखता, समझता है। भारतीय दर्शन यह मानता है कि इस शरीर की रचना पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटकों- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से ही हुई है। समुद्र मंथन से वृक्ष जाति के प्रतिनिधि के रूप में कल्पवृक्ष का निकलना, देवताओं द्वारा उसे अपने संरक्षण में लेना, इसी तरह कामधेनु और ऐरावत हाथी का संरक्षण इसके उदाहरण हैं। कृष्ण की गोवर्धन पर्वत की पूजा की शुरुआत का लौकिक पक्ष यही है कि जन सामान्य मिट्टी, पर्वत, वृक्ष एवं वनस्पति का आदर करना सीखें। पीपल के वृक्ष में त्रिदेव यानी ब्रह्मा, विष्णु व शिव का वास तो आंवले के पेड़ में लक्ष्मीनारायण के विराजमान होने की परिकल्पना की गई है।

पर्यावरण सुरक्षा की जिम्मेदारी सिर्फ सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं की ही नहीं है, बल्कि इसकी शुरुआत हम स्वयं से या अपने परिवार और कार्यस्थल से कर सकते हैं। 'यूज एंड थ्रो' की दुनिया को छोड़ 'पुनः सहेजने' वाली प्रवृत्ति से जुड़ाव की जरुरत है। जैव-विविधता के संरक्षण एवं प्रकृति के प्रति अनुराग पैदा करने हेतु फूलों को तोड़कर उपहार में बुके देने की बजाय गमले में लगे पौधे भेंट किये जाएँ। स्कूल में बच्चों को पुरस्कार के रूप में पौधे देकर, उनके अन्दर बचपन से ही पर्यावरण संरक्षण का बोध कराया जा सकता है।

इसके पीछे वृक्षों को संरक्षित रखने की भावना निहित है।

पर्यावरण सुरक्षा की जिम्मेदारी सिर्फ सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं की ही नहीं है, बल्कि इसकी शुरुआत हम स्वयं से या अपने परिवार और कार्यस्थल से कर सकते हैं। 'यूज एंड थ्रो' की दुनिया को छोड़ 'पुनः सहेजने' वाली प्रवृत्ति से जुड़ाव की जरुरत है। जैव-विविधता के संरक्षण एवं प्रकृति के प्रति अनुराग पैदा करने हेतु फूलों को तोड़कर उपहार में बुके देने की बजाय गमले में लगे पौधे भेंट किये जाएँ। स्कूल में बच्चों को पुरस्कार के रूप में पौधे देकर, उनके अन्दर बचपन से ही पर्यावरण संरक्षण का बोध कराया जा सकता है। इसी प्रकार सूखे वृक्षों को तभी काटा जाय, जब उनकी जगह कम से कम दो नए पौधे लगाने का प्रण लिया जाय। जीवन के यादगार दिनों मसलन- जन्मदिन, वैवाहिक वर्षगाँठ या अन्य किसी शुभ कार्य की स्मृतियों को सहेजने के लिए पौधे लगाकर उनका पोषण करना चाहिए, ताकि सतत-संपोष्य विकास की अवधारणा निरंतर फलती-फूलती रहे। पर्यावरण को सुरक्षित रखने हेतु आज के उपभोक्तावादी

जीवन में इको-फ्रेंडली होना बेहद जरूरी है। वर्षा जल-संचयन प्रणाली, जैविक-खाद्य, पॉलिथिन व प्लास्टिक का उपयोग बंद, कार पूल या सार्वजनिक वाहन प्रणाली का प्रयोग, सूरज की रोशनी में अधिकाधिक काम, सौर ऊर्जा का उपयोग, ऊर्जा बचाने हेतु एसी का सीमित उपयोग, सी.एफ.एल. का उपयोग, फोन, मोबाइल, लैपटॉप आदि का 'पॉवर सेविंग मोड' पर इस्तेमाल, कूड़ा करकट, सूखे पत्ते, फसलों के अवशेष और अपशिष्ट जलाने से परहेज, री-सायकलिंग द्वारा पानी की बर्बादी रोककर टॉयलेट इत्यादि में उपयोग, जैसे तमाम कदम उठाकर पर्यावरण संरक्षण में अहम योगदान दिया जा सकता है।

आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के परिप्रेक्ष्य में मानव और पर्यावरण के मध्य संबंधों में महती परिवर्तन हुआ है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास ने मानव को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पर्यावरण को आकार देने के उद्देश्य से अप्रत्याशित अवसरों को जन्म दिया है। यदि इन अवसरों को नियंत्रित ढंग से उपयोग नहीं किया गया तो अनेक गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न होंगी। मानव को यह नहीं भूलना चाहिए कि हम कितना भी विकास कर लें, पर पर्यावरण की सुरक्षा को नजरअंदाज कर किया गया कोई भी कार्य समूची मानवता को खतरे में डाल सकता है। अगर दुनिया भर में प्राकृतिक संसाधनों का सोच-समझकर और सम्भलकर उपयोग नहीं किया गया, तो धरती लोगों की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाएगी। देश, धर्म और जाति की दीवारों से परे यह ऐसा मुद्दा है जिस पर पूरी दुनिया के लोगों को एक साथ खड़ा होना होगा। पर्यावरण संरक्षण सिर्फ भाषणों, फिल्मों, किताबों और लेखों से ही नहीं हो सकता, बल्कि हर मनुष्य को धरती के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी, तभी कुछ सकारात्मक प्रभाव नजर आ सकेगा। अतः जरूरत है कि अभी से प्रकृति व पर्यावरण के संरक्षण के प्रति सचेत हुआ जाए और इसे समृद्ध करने की दिशा में तत्पर हुआ जाय।

आकांक्षा यादव

सम्मान इनका भी होना चाहिये

हास्य व्यंग

आजकल देश भर में ऐसे साहित्यिक आयोजनों की बाढ़ आई हुई है

जिनमें ढेर सारे साहित्यकारोँ को सम्मानित किया जाता है ऐसे आयोजन आये दिन होते रहते हैँ आपनें देखा होगा वाट्सेप्प और फ़ेस बुक पर ऐसे समाचारों की झड़ी लगी रहती है और एक ख़ास बात ऐसे कार्यक्रमों में अधिकाँश चेहरे वही के वही होते है

आयोजक भी तरह तरह के आकर्षक नामों वाले सम्मान वितरित करते हैँ तो जिनके पास ऐसे नाम वाले सम्मान नहीँ होते वह एक दूसरे के माध्यम से पता करके वे भी वह सम्मान पत्र शॉल प्रतीक चिन्ह हथिया लेते हैँ लेकिन फ़िर भी बहुत से लोग जो अच्छा नहीँ लिख पाते या औरों की देखादेखी एक आध कविता लिख कर गोष्ठियों में सुना कर कवि बन जाते हैँ उनका भी सम्मान होना चाहिऐ यही सोच कर हमनें भी कुछ सम्मान ऐसे ही लोगोँ को देनें के लिऐ घोषणा कर दी जो कि निम्न प्रकार थे:-

1_काव्य जगत के ठसियल सम्मान ये सम्मान उनके लिऐ है जो एक दो कविताएँ लिख कर कवि बने बैठे हैँ

2_काव्य जगत के किडनेपर ये सम्मान उन्हे दिया जायेगा जो साहित्यिक संस्थाओ को अपनी दादागीरी के दमपर हथिया कर उस संस्था के अध्यक्ष बने बैठे हैँ

3_साहित्य जगत के कलंक ये सम्मान उन्हे दिया जायेगा जो कविता तो लिखते नहीँ हैँ लेकिन अपनी हरकतों और दबंगई के दम पर कवि या लेखक बने बैठे हैँ

4-काव्य जगत के चोर लुटेरे ये सम्मान उन को दिया जायेगा जो किसी की भी कविता चुरा कर बे झिझक उसी के सामनें पढ़ते हैँ

5_साहित्य जगत के भिखारी ये सम्मान उन्हे दिया जायेगा जो दूसरे कवियों से एक एक कविता मांग कर अपने नाम से पढ़ते हैँ उन्हे यह सम्मान घूरे पर बिठा कर दिया जाएगा।

मैंने सोचा ये सम्मान लेनें तो कोई भी साहित्यकार तैयार नहीँ होगा

लेकिन आपको जानकर आश्चर्य होगा कि ये सभी तरह के सम्मान लेनें वालों की भीड़ लगी है कई लोग तो ये सभी सम्मान लेनें को आतुर हैँ और मन चाही राशि भी देनें को तैयार हैँ यह जानकर हमें बहुत शर्म आ रही है और ग्लानि भी हो रही है कि हम भी एक साहित्यकार हैं।

हमें भी दोस्त उड़ान भरने के लिए, एक अदद सम्मान की ज़रूरत है।

डॉ रमेश कटारिया पारस

भोजपुरी के लब्धप्रतिष्ठ कवि : प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ'

संस्मरण

व्यक्ति और कवि रूप में

शशिबिन्दु नारायण मिश्र

के हू के मड़ई में बरखा टप-टप घुड़दौड़ मचावत बाऽ, उक्त काव्य पँक्ति अख़बार की 'हेडिंग' बनी थी। क्षेत्रीय काव्यगोष्ठी में जीवन में दैन्य भरी अभावग्रस्तता को उद्घाटित करती हुई यह कविता कवि प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' ने मंच से पढ़ी थी । पूरी कविता इस समय याद नहीं आ रही है ।

मैंने कहा था कि -"बरखा तो वर्षा का अपभ्रंश है, वर्षा को स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया जाता है और आपने बरखा को पुलिंगवत् प्रयुक्त किया है, यहाँ लिंगत्व दोष है।" तो उन्होंने कहा था कि -"ए बाबू ! बोलल जाला तऽ अइसे, यहाँ तुहार व्याकरण नाहीं लागू होई।" सच में मैंने ध्यान दिया तो 'बरखा' को वैसे ही प्रयुक्त किया जाता है।

गाँवों में अधिकतर लोगों के घर छप्पर (मड़ई) के ही होते थे अथवा बहुत हुआ तो खपरैल के। प्रभाकर जी ने बरसात के दिनों में मूसलाधार बारिश से चूती हुई मड़ई में लोगों की दुर्दशा की जीवन्त चित्रण किया था।

शायद वर्ष 1993 या 1994 की बात है। हम सबने मिलकर एक काव्य-गोष्ठी का आयोजन किया था। गोष्ठी की रिपोर्टिंग मैंने की थी, लेकिन अख़बार ने पूरी 'रिपोर्टिंग' बदलकर अपने ढंग से छापा था । अख़बार में भेजी गयी तारकेश्वर बाजपेई, रामनवल मिश्र, प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' आदि हिन्दी / भोजपुरी के मजे हुए बड़े कवियों के साथ तमाम उदीयमान कवि भी उनके सानिध्य में काव्य-गुण सीख रहे थे। 1990-1991 से हम लोग अपने क्षेत्र में लगातार काव्य गोष्ठियाँ करते रहे। मुझे भी शुरू से ही लिखने का शौक रहा है, साहित्य का संस्कार बचपन में परिवार से ही मिला है।

प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' की व्यंग्य रचनाएँ सीधे मन को छूती हैं और बहुत ही मारक-चुटीली होती हैं। मैं स्नातक में पढ़ रहा था, मई या जून का महीना था, प्रभाकर जी मेरे घर आये थे। घर के बाहर छप्पर में बइठकी जमी। आवभगत के बाद पिता जी ने कहा कि -"अच्छा ! प्रभाकर धर ! एक ठो कविता सुनावऽ ।"

उन्हें मेरे यहाँ देखकर मेरे घर के अगल-बगल के दो-चार लोग और आ ही जाते थे। मेरे सहोदर भाई लोग थे ही, पंडी जी, खजांची सेठ , भिरगू और आफतहरन भी आ गये थे, बटोही और रामसकल पहले से ही बैठे थे। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' ने जो कविता पढ़ी थी, उसकी कुछ पंक्तियाँ अब तक नहीं भूली हैं --"पढ़ि -लिखि के जे घूमत बाटेऽ, नोकरी नाहीं पवलस / गोड़े में चबदल पैजामा कुर्ता एक सियवलस / चौराहा पर गोलि बान्हि के, चाय-पकौड़ी काटेऽ / मुह-दुबरन के देखिऽ के कतहूँ, कुकरे अइसन डाँटेऽ / चटकी नाव-भाव बढ़ि जाई , नेता जी कहलइबऽ /

सरकारी दुकान से पहिले चीनी-तेल तूऽ पईबऽ।"

सुनकर हम सभी हँसते-हँसते लोटपोट हो गये थे। बटोही / आफ़त जैसे अनपढ़ भी कविता का बखूबी आस्वाद ले रहे थे। कविता की सार्थकता तो यही है, कि पढ़ने / सुनने वाले के हृद्तन्त्री के तार झंकृत हो उठें। अन्तिम दशक में उभरती हुई क्षेत्रीय जातिवादी राजनीतिक पार्टियों के प्रभाव से गाँव-गाँव में ऐसे छुटभैयूए नेता उभर रहे थे, उनसे पूरा समाज धीरे धीरे प्रभावित हो रहा था। कवि ने उस विषय को उठाया और अपने काव्य-कौशल से उसमें प्राण डाल दिया था। कवि ने उस कविता में दिशा के साथ निष्कर्ष भी दिया था --"जे आपन ई लोक बनाई, ऊ परलोक बिगारी / लरिके रोइहें भूजा बेगर, मेहरी देई गारी।" भोजपुरी-कविताओं में भी सहज कथ्य के साथ समाज को बड़ा संदेश दिया जा सकता है , यह क्षमता प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' में ख़ूब थी।

प्रभाकर जी मंच पर हों या गाँव-घर में दो-चार लोगों के बीच हों, सहज होकर उन्मुक्त भाव से कविताएँ सुनाते हुए श्रोताओं के मन से जुड़ते थे। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' भोजपुरी के बड़े व्यंग्यकार थे।

प्रभाकर धर 'लण्ठ' जी पर आलेख गत नवम्बर / दिसम्बर में ही लिखा जाना था, उनके बड़े पुत्र मन्नन ने बहुत आग्रह किया था, मन्नन इसके लिए 3-4 बार मुझसे मिले भी। वे प्रभाकर जी की अप्रकाशित कविताओं का संग्रह निकलवा रहे थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी, कि उसमें मेरा भी आलेख हो, उन्होंने उनकी चुनी हुई कुछ कविताएँ भी मुझे दी।

प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' जी की मृत्यु के साल भर बाद उनका 'मन की व्यथा' नामक भोजपुरी काव्य- संग्रह उनके लड़कों के सद्प्रयत्नों से प्रकाशित हो चुका है, लोकार्पण भी उनके पैतृक घर पर 12 फरवरी 2023 को हुआ है, मुझे भी आने के लिए हृदय से आग्रह किया था, लेकिन शहर में अतिव्यस्तता की वजह से मैं नहीं जा सका। बचपन से लेकर अब तक प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' जी के यहाँ मांगलिक और साहित्यिक कार्यक्रमों के मद्देनजर मैं सैकड़ों बार उनके घर गया हूँ और वह मेरे घर आये थे। मेरे घर किसी भी आयोजन में वह न आये हों अथवा मैं उनके यहाँ न गया होऊँ , ऐसा कभी नहीं हुआ था।

नवम्बर / दिसम्बर में मैंने बहुत चाहा कि प्रभाकर जी पर कुछ मन से लिख सकूँ,पर नहीं हो सका,दरअसल हर चीज़ का एक समय होता है , यह तय है, यह ईश्वरीय विधान है, कि कोई भी कार्य अपने निश्चित समय पर ही होगा। जगत् में सब कुछ पूर्व नियोजित है, ईश्वराधीन है। बाद में जनवरी 2023 में मेरे यहाँ मिलने आये प्रतिष्ठित गीतकार जयप्रकाश नायक से प्रसंगवश इसकी चर्चा होने पर नायक जी ने भी मुझसे कहा कि "आप पहले होते, तो हम भी प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' पर कुछ लिखते, क्योंकि लण्ठ जी के साथ मैंने गाँव से लेकर शहर तक बहुत बार काव्य-मंच साझा किया है।" तब तक प्रभाकर धर की पुस्तक छप चुकी थी।

प्रभाकर धर 'लण्ठ' जी पर आलेख गत नवम्बर / दिसम्बर में ही लिखा जाना था, उनके बड़े पुत्र मन्नन ने बहुत आग्रह किया था, मन्नन इसके लिए 3-4 बार मुझसे मिले भी। वे प्रभाकर जी की अप्रकाशित कविताओं का संग्रह निकलवा रहे थे।

बहरहाल, गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने रामचरितमानस, बालकाण्ड में देवाधिदेव शिव जी से कहलवाया है -

"होइहैं सोइ जो राम रचि राखा।

को करि तरक बढ़ावहिं साखा॥"

'लण्ठ' जी से जब पहली

मुलाकात हुई, तो उन्हें कवि रूप में ही जाना था, छठवीं कक्षा का विद्यार्थी था, स्वावलम्बी इण्टर कॉलेज बिशुनपुरा गोरखपुर में राजनारायण सिंह की जगह 'म्युचुअल-ट्रांसफर' से रवीन्द्र सिंह नये- नये प्रिंसिपल होकर आजमगढ़ से आये थे। रवीन्द्र सिंह जी की खासियत रही कि क्षेत्र के सभी प्रतिष्ठित और पढे-लिखे लोगों से मिलते थे, सबको जाना और विद्यालय पर ससम्मान बुलाया भी। बाद में स्थितियाँ कुछ भिन्न हो गयीं, जिसकी चर्चा यहाँ अनपेक्षित है।

कवि प्रभाकर धर 'लण्ठ' को रवीन्द्र सिंह जी ने अपने कार्यकाल के प्रथम वर्ष में विद्यालय पर बुलवाया और 15 अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस पर उनका शानदार काव्य पाठ विद्यालय पर हुआ था। 'लण्ठ' जी ने 15 अगस्त को बलिदानियों पर कविता पढ़ने के बाद एक कविता विद्यालय के संघर्षशील मनीषी मूल संस्थापकों पर भी पढ़ी थी, जो तत्कालीन व्यवस्था से जुड़े लोगों को अच्छी नहीं लगी, अतः फिर कभी अतिथि कवि के रूप में उन्हें जीवन- पर्यन्त आमंत्रित नहीं किया जा सका। कभी-कभार वे अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और विद्यालय में साहित्य -प्रेमी लोगों से मिलने- जुलने के सिलसिले में विद्यालय पर आते रहे।

विद्यालय के तत्कालीन नवागत प्रधानाचार्य रवीन्द्र सिंह जी तत्कालीन परिचारक दयानन्द गौड़ को लेकर विद्यालय के सटे बगल के गाँव रानापार में उक्त विद्यालय के मूल संस्थापकों में से एक मनीषी साहित्यकार पं. गणेश दत्त मिश्र 'मदनेश' के यहाँ स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर स्वयं चलकर गये थे , इसका मैं साक्षी रहा हूँ। विद्यालय पर आने के लिए आग्रह किया था। बाल्यावस्था में मैं भी वहाँ घण्टों बैठा रहा था। 'मदनेश' जी अस्वस्थता के कारण विद्यालय नहीं जा सके

थे , उसके ठीक एक महीने बाद 'मदनेश' जी सितम्बर महीने में 87 वर्ष की आयु में अकस्मात गोलोकवासी हो गये थे । रवीन्द्र सिंह जी का यह स्वविवेक था, यह उनका बड़प्पन भी कि वह क्षेत्र में गणमान्य लोगों के यहाँ यहाँ स्वयं गये और सबको बुलाया। उसके बाद के कुछेक प्रधानाचार्यों ने स्वविवेक पर इस परम्परा को कुछ हद तक विद्यालय में निभाया । प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' को पहली बार नजदीक से, मंच से और गौर से अपने विद्यालय पर ही सुना था। दो भोजपुरी कविताएँ सुनाई थीं, दोनों अच्छी थीं। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' जी बहुत बार बड़े मंचों पर बड़े कवियों पर भी अपनी दुर्लभ व्यंग्य रचनाओं के सहारे भारी पड़ जाते थे।

रवीन्द्र सिंह जी जब तक रहे, तब तक व्यक्तिगत रूप से प्रभाकर धर द्विवेदी से जुड़े रहे, प्रभाकर धर जी भी विद्यालय पर आते रहे, विशेष रूप से जब तक एकांकीकार और कहानीकार प्रभुनाथ सिंह 'प्रजेश' जी प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत रहे।

लेकिन विद्यालयी मंच पर फिर दोबारा वे काव्य पाठ नहीं कर सके, इसका दर्द उन्हें हमेशा रहा, मुझे भी और मेरे जैसे अनेक साहित्य प्रेमियों को भी। बिशुनपुरा में मेरे अध्यापक होने पर प्रभाकर जी ने बहुत बार कहा था, कि स्कूल पर एक कवि सम्मेलन करवा दीजिए। तत्कालीन प्रिंसिपल प्रभुनाथ सिंह जी से भी कहा था, लेकिन हम लोगों की विद्यालय में एक सीमा थी और है। इसके लिए मेरे सामने उन्होंने शिकायत भरे लहजे में आक्रोश भी व्यक्त किया था।

प्रभाकर धर द्विवेदी का उपनाम 'लण्ठ' कब और कैसे पड़ा ? प्रभाकर जी इसकी चर्चा के क्रम में कवि परमात्मा मणि 'पतंग' को जिम्मेदार ठहराते हैं। किसी बड़े कवि मंच पर प्रभाकर जी की 'वसंत ऋतु ' वाली कविता पर परमात्मा मणि 'पतंग' ने उन्हें पहली बार 'लण्ठ' शब्द से सम्बोधित किया था, एतराज़ जताने पर उन्होंने समझाया था, फिर सभी ने हमेशा के लिए 'लण्ठ' उपनाम रख दिया। सबके द्वारा बार-बार लण्ठ कहे जाने पर प्रभाकर धर ने 'लण्ठ' शब्द से अपने को जोड़ते हुए 'लण्ठ' पर ही छः पंक्तियों की एक व्यष्टिगत- आत्मकथ्यात्मक रोचक कविता लिखी थी, जो कि पूरे समाज और व्यवस्था का समकालीन यथार्थ है---"लण्ठ-लण्ठ काऽ कइले बाटऽ , लण्ठ बनल काऽ बाऊर बाटेऽ / लण्ठेऽ सज्जी देश चलावें , लण्ठेऽ सज्जी नियम बनावें / सुख सुविधा आ मान बड़ाई,एहवां सज्जी लण्ठेऽ पावें / सज्जन बनीऽ ते चाटी सतुआ, कब्बो उखरले न उखरी बथुआ।"

लेकिन विद्यालयी मंच पर फिर दोबारा वे काव्य पाठ नहीं कर सके, इसका दर्द उन्हें हमेशा रहा, मुझे भी और मेरे जैसे अनेक साहित्य प्रेमियों को भी। बिशुनपुरा में मेरे अध्यापक होने पर प्रभाकर जी ने बहुत बार कहा था, कि स्कूल पर एक कवि सम्मेलन करवा दीजिए। तत्कालीन प्रिंसिपल प्रभुनाथ सिंह जी से भी कहा था, लेकिन हम लोगों की विद्यालय में एक सीमा थी और है। इसके लिए मेरे सामने उन्होंने शिकायत भरे लहजे में आक्रोश भी व्यक्त किया था।

उन्हीं द्वारा समय -समय पर बताए गए उनके परिचय को यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक लग रहा है। प्रभाकर जी मेरे पिता जी से उम्र में साल-डेढ़ साल छोटे थे और पढ़ाई के दिनों में पं. गणेश दत्त मिश्र 'मदनेश' और पं. वंशराज त्रिपाठी द्वारा स्थापित जनता विद्या समिति बिशुनपुरा गोरखपुर द्वारा संचालित विद्यालय में मेरे पिता जी के जूनियर थे। शुरुआती दिनों में उक्त विद्यालय कक्षा 6 से कक्षा 8 तक ही स्थापित हुआ था और रानापार में स्थित तत्कालीन बच्चा बाबू की छावनी में वह विद्यालय 1951 से 1954 तक चला था। उक्त जनता विद्या विकास समिति कार्यकारिणी के प्रथम अध्यक्ष पं. गणेश दत्त मिश्र 'मदनेश' और प्रथम मन्त्री / प्रबन्धक पं. वंशराज त्रिपाठी थे, इन्हीं लोगों के आग्रह पर सूर्य वीर विक्रम बहादुर सिंह उर्फ बच्चा बाबू (बरही स्टेट) ने अपनी छावनी पर विद्यालय चलाने की अनुमति दी थी। प्रभाकर धर के पिता स्वर्गीय विंदेश्वरी धर द्विवेदी उस समय गजाईकोल न्याय पंचायत के सरपंच हुआ करते थे, सरार के ही नहीं, क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और जनता विद्या विकास समिति की प्रथम कार्यकारिणी के भी सक्रिय सदस्य थे , उसी गाँव के जगत नारायण धर द्विवेदी भी कार्यकारिणी के सदस्य थे। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' का जन्म 1943 में सरार में विंदेश्वरी धर द्विवेदी के यहाँ हुआ था। प्राथमिक शिक्षा थुन्ही बाजार से, आठवीं कक्षा तक की शिक्षा बिशुनपुरा से हुई, उसके आगे की पढ़ाई कौड़ीराम से हुई थी।

प्रभाकर धर जी बताते थे, कि जनता विद्या विकास समिति द्वारा स्थापित विद्यालय में छठवीं कक्षा में प्रबन्धक वंशराज त्रिपाठी जी छात्रों को विद्यालय से जोड़ने के सम्पर्क अभियान में उनके घर जाकर उनके पिता स्वर्गीय विंदेश्वरी धर द्विवेदी से कहा था कि - "रउरे पाचन अपने लड़िकन के एह स्कूले में पढ़े के भेंजी, जेसे देखी-देखा सब अपने लड़िकन के पढ़े के भेजी। लिहाजा इस तरह के अनेक सद्प्रयत्नों से विद्यालय को चलाया जा सका था। प्रभाकर धर ने जीवन के यथार्थ को नजदीक से देखा था, उसे भोगा था। बहुत ऊँची शिक्षा नहीं हो पायी थी, नौकरी भी स्थाई रूप से कहीं नहीं लग सकी थी। शरीर से भी वे बलिष्ठ नहीं रहे, खेती-किसानी में भी मेहनत नहीं कर पाते थे और वह समय एसा रहा कि खेती- बारी कभी उन्नत जीवन-शैली के लिए आय का साधन नहीं बन सकती थी। परिवार और बाल बच्चों के भरण पोषण का दबाव अलग से हमेशा रहा। इन परिस्थितियों में ऐसा सबके साथ होता है।

इन सब बातों का कवि-मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था, उनके हर व्यवहार,भाषा और

उनकी कविताओं में भी। उनकी कविता की एक पंक्ति है --

"शिशु मंदिर केऽ आचार्य हईं ,तनखाहि पचासी पाइलेऽ /

सम्मान बहुत बड़वर हउवे , करजा - उधार ले खाइलेऽ।"

चूँकि पारम्परिक रूप में अपने पिता और परिवार की प्रतिष्ठा को देखते हुए उसे समाज में बरकरार रखने का दबाव प्रभाकर धर जी पर अलग से था, जिसे मैंने समय- समय पर उनसे मुलाकात /बातचीत के दरम्यान महसूस किया है। पारिवारिक सम्बन्ध के नाते कभी-कभार मन की बात मुझसे कहते थे, लेकिन बाहर से उसे सभा- समाजों में प्रकट नहीं होने देते थे , कभी नहीं। समाज में अपनी ठसक कायम रखना चाहते थे , उनकी गर्व सूचक शारीरिक चेष्टाओं से और कविताओं से एहसास होता रहता था । यदा-कदा उनके गाँव में जाते, तो उस गाँव के प्रतिष्ठित शिक्षक पं. मा. जगन्नाथ धर दुबे जी के यहाँ बइठकी हो जाती, प्रभाकर जी की गर्व सूचक चेष्टाओं को मा. जगन्नाथ जी लक्षित करते, बात-बात में हास-परिहास के क्षण भी आते ।

उनसे जुड़ी अनेक स्मृतियाँ ,जो मन को कुरेदती रहती हैं --

लण्ठ जी से जुड़ी एक घटना, बात 30 जून सन् 1988 की है, मेरे विवाह का दिन था, एक जुलाई को जनवासा / शिष्टाचार सभा का आयोजन था। उस समय तक वैवाहिक समारोहों में दूसरा दिन विशेष महत्त्व का होता था। एक जुलाई 1988 को ही ग्राम पंचायतों का मतदान भी होना था। रानापार - डुमरी और आसपास के सैकड़ों बराती अपने -अपने गाँव सुबह बरात से ही मतदान करने गये और फिर अपराह्न में बरातियों के भोजन के समय बराती उपस्थित हुए। सायं काल में बहुत ही शानदार शिष्टाचार- सभा / जनवासा का आयोजन हुआ। कुछ ने मंगलिक श्लोकों से, कुछ ने काव्य पाठ द्वारा, कुछ ने गीतों के माध्यम से और कुछ ने सेहरा गाकर वर-वधू के लिए मंगलकामना की । कवि लण्ठ जी ने वर-वधू के गाँव, परिवार और नाम को जोड़कर शानदार,मन को विह्वल करने वाली बहुत सुंदर कविता पढ़ी थी। मेरे सहोदर द्वारा जनवासे का शानदार ढंग से संचालन करने के कारण शिष्टाचार- सभा में चार-चाँद लग गया था।

अपने ही विवाह की शिष्टाचार-सभा में लण्ठ जी की काव्यप्रतिभा का दूसरी बार मैं दर्शन कर रहा था । उभयपक्ष के बहुतेरे बरातियों ने प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' जी को पहली बार सुना था और लोग बखूबी उनसे प्रभावित हुए थे । जनवासे में उपस्थित विवाह के अगुआ और उस क्षेत्र के अत्यंत प्रतिष्ठित व्यक्ति झारखण्डेय शुक्ल जी (मेरे सगे मामा) ने लण्ठ जी की स्वरचित मांगलिक कविता से काफ़ी प्रभावित हुए और नकद पुरस्कार दिया , तो बहुतों ने उनका अनुकरण कर प्रभाकर जी को पुरस्कृत किया था, उस जनवासे में प्रभाकर धर जी ने अपनी 'वसंत' वाली सर्वश्रेष्ठ कविता भी पढ़ी थी। वह जनवासा खूब जमा था। अब तो शिष्टाचार सभा / जनवासा अतीत का , इतिहास का हिस्सा हो चुका है। पढ़े- लिखे, आधुनिक और सभ्य समाज के लिए अब विवाह में जनवासा गैरजरूरी माना जाता है। उस समय के वैवाहिक समारोहों में शिष्टाचार सभा के आयोजनों से एक बात का पता चलता था कि वर और वधू पक्ष का पढ़े -लिखे लोगों से, विद्वान्- शिष्ट वक्ताओं से, अध्यापकों से जुड़ाव है अथवा नहीं, यदि है तो किस स्तर का ? वर-वधू दोनों पक्षों के मुखिया लोग समाज के पढ़े- लिखे लोगों से जनवासे में उपस्थित रहने के लिए खूब सिफारिश करते थे , जो कि जनवासे में प्रभावकारी मांगलिक उद्बोधन दे सकें।

1996-1997 में क्षेत्र के लोगों ने मिलकर मनीषी साहित्यकार पं. गणेश दत्त मिश्र 'मदनेश' की पुण्यस्मृति में 'मदनेश' साहित्य- संस्कृति परिषद् 'का गठन किया था। जिसके तहत उस परिषद् से जुड़े लोगों के यहाँ हर महीने काव्य-गोष्ठी / साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित होते थे।

1996-1997 में क्षेत्र के लोगों ने मिलकर मनीषी साहित्यकार पं. गणेश दत्त मिश्र 'मदनेश' की पुण्यस्मृति में 'मदनेश' साहित्य-संस्कृति परिषद् 'का गठन किया था। जिसके तहत उस परिषद् से जुड़े लोगों के यहाँ हर महीने काव्य-गोष्ठी / साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित होते थे। इसमें डुमरी से भोजपुरी कवि रामनवल मिश्र, वीरेन्द्र प्रसाद मिश्र, रामानुज मिश्र, सुग्रीव मिश्र, सरार से कवि प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ', विशुनपुरा से अमरनाथ निषाद, रानापार से रामदवन यादव, सिलहटा से जगदीश शर्मा आदि प्रमुख रूप से जुड़े थे । क्रम से सबके यहाँ हर महीने काव्य-गोष्ठी होती रहती थी। इससे नवोदित पीढ़ी के रचनाकारों का परिष्कार भी होता था। बकसूड़ी में देवीशंकर अवस्थी और उमाशंकर चंद,

बौंठा में शास्त्रीय कवि तारकेश्वर बाजपेई और उनके सानिध्य में काव्यगुर सीखने वाले ओमप्रकाश, सरार के आदित्य परमोज्ज्वल (गजाधर द्विवेदी) की भी समय- समय पर साहित्यिक कार्यक्रमों / गोष्ठियों में सक्रियता स्मरणीय है।

इसी क्रम में 'मदनेश' साहित्य -संस्कृति परिषद् ' के तत्वावधान में 08 दिसम्बर 1997 को एक भव्य साहित्यिक -सांस्कृतिक आयोजन स्वावलम्बी इण्टर कॉलेज बिशुनपुरा गोरखपुर के परिसर में किया गया था। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में हिन्दी के सुविख्यात समालोचक एवं कथाकार डॉ रामदेव शुक्ल जी पधारे थे ।

वैसा जीवन्त साहित्यिक -सांस्कृतिक कार्यक्रम फिर दोबारा उस विद्यालय पर केवल एक बार 2003 में पं. विद्यानिवास मिश्र के राज्यसभा सदस्य बनने पर उनके अभिनन्दन के लिए आयोजित हो सका है।

पं. गणेश दत्त मिश्र 'मदनेश' जी के समुन्नत व्यक्तित्व और कृतित्व पर पूर्व प्रधानाचार्य आचार्य मदनमोहन राय, कवि प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' , कवि रामनवल मिश्र आदि ने बहुत ही सघन स्मृतियों के साथ शानदार उद्बोधन दिया था । जहाँ तक मुझे याद है कि शिक्षक प्रसिद्ध नाथ मिश्र, नरेन्द्र प्रसाद मिश्र और तत्कालीन प्रबंधक रामसरिस यादव आदि ने भी मंच से 'मदनेश' जी और कार्यक्रम को लेकर कुछ अच्छा उद्बोधन दिया था। कवि रामनवल मिश्र ने अपने उद्बोधन में जब कहा कि -मदनेश जी मेरे सहोदर विख्यात साहित्यकार डॉ रामदरश मिश्र के प्रारम्भिक साहित्यिक गुरु हैं।" तो डॉ रामदेव शुक्ल के मन में 'मदनेश' जी के बारे में जानकारी लेने की उत्कण्ठा हुई थी।

'मदनेश' जी पर उक्त सभी के वक्तव्यों को सुनकर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रोफ़ेसर शुक्ल जी ने 'मदनेश' जी की विशाल हृदयता और समुन्नत व्यक्तित्व से पूरे अञ्चल और उस ग्राम्य परिवेश को अविच्छिन्न रूप से जोड़ते हुए घण्टे पर का चिरस्मरणीय उद्बोधन दिया था। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' जी जब अपनी रोचक शैली में 'मदनेश' जी से जुड़ी स्मृतियों को भावुक होकर सुना रहे थे, तो प्रोफ़ेसर शुक्ल जी लगातार उन्हें देख रहे थे । कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद प्रोफ़ेसर शुक्ल जी ने कवि प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' का हाथ थामकर उन्हें इसके लिए हृदय से बधाई और शुभकामना दी थी। उसी दिन रात्रि में भव्य कवि सम्मेलन भी आयोजित हुआ था। क्षेत्रीय कवियों के अतिरिक्त कृष्ण मुरारी शुक्ल 'भकोल', गाजीपुर से देवनारायण सिंह 'राकेश' आदि बड़े कवि मंच पर थे। हास-परिहास में प्रसंगवश कवि प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' और देवनारायण सिंह 'राकेश' के बीच काव्य पटल पर जो हास-परिहास के क्षण आये थे, उससे कार्यक्रम यादगार बन गया।

उक्त आयोजन से जुड़े लोगों में कुछ रिटायर लोग थे और कुछ पूरी तरह से बेरोजगार, अतः वह आयोजन आगे नहीं बढ़ सका। असमय दम तोड़ गया।

प्रभाकर जी की मैंने सैकड़ों भोजपुरी कविताएँ पास बैठकर सुनी है, लगभग सभी कविताएं सामयिक हैं और अनेक बहुचर्चित भी। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' यथार्थ के कवि हैं, सहज और सम्प्रेष्य कवि हैं। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' की निम्नलिखित कविताएँ मुझे विशेष रूप से प्रभावित की हैं -- 'भगवान के चिट्ठी' , 'वर्तमान शिक्षा', 'अजुके जुग', 'सुखिया के चिट्ठी', 'गजपुर', 'गाय', 'गाँवे के ओर', 'वसंत ऋतु ', 'वृक्षारोपण', 'बाल कविता', 'वसंत पर -2', 'अपनी व्यथा ', 'लंठ', और 'आजादी पर दो मुक्तक', । 'वसंत पर-2' कविता ही उनके लण्ठ उपनाम के लिए जिम्मेदार है, इसकी कुछ पंक्तियाँ देखिए -

'मदनेश' जी पर उक्त सभी के वक्तव्यों को सुनकर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रोफ़ेसर शुक्ल जी ने 'मदनेश' जी की विशाल हृदयता और समुन्नत व्यक्तित्व से पूरे अञ्चल और उस ग्राम्य परिवेश को अविच्छिन्न रूप से जोड़ते हुए घण्टे पर का चिरस्मरणीय उद्बोधन दिया था। प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' जी जब अपनी रोचक शैली में 'मदनेश' जी से जुड़ी स्मृतियों को भावुक होकर सुना रहे थे, तो प्रोफ़ेसर शुक्ल जी लगातार उन्हें देख रहे थे ।

-"हे वसंत ! तू आवलऽ , सबके मन के तूऽ भावलऽ / कारन कवन कहऽ तू, विरही तन आगि लगावलऽ / .... कोयल कऽ कू कू तान सुना,पिक बयनी होश परावेलऽ / पपीहा कऽ पी-पी राग सुना, प्रियतम कऽ यादि जगावेलऽ ।" इस कविता को जब प्रभाकर जी सुनाते, तो चाहे युवा हों, प्रौढ़ हों , वृद्ध हों, धर हों अथवा नारी हों, हर श्रोता के मन में गुदगुदी सी होने लगती थी। 'आज़ादी' पर अपने दो बेहतरीन मुक्तकों में देश की एकता को खंडित करने वाले तत्वों को सीख देते हुए अनेकता में एकता पर बल दिया है।

कोई अरबपति हो या दरिद्र हो, नून-तेल-रोटी तो सबको चाहिए। 'वृक्षारोपण' कविता में वे कितने सलीके से पेड़ों की महत्ता बताते हैं -- "नून -तेल-लकड़ी के हऊवे बहुत पुराना नाता / एही के जोगाड़ बन्हले में सबकर उमर खपाता / .... लोक और परलोक सुधरिहें ,एसे बहुत भलाई।"

कवि प्रभाकर धर द्विवेदी आधुनिक चेतना से युक्त होकर भी परम्परागत मान्यताओं का तिरस्कार नहीं करते हैं। उनकी काव्य दृष्टि सामंजस्य बैठाती है। 'सुखिया के चिट्ठी' नामक उनकी कविता ने मुझे बहुत प्रभावित किया। उसे दर्जनों बार उनके मुख से सुना हूँ। 'सुखिया केऽ चिट्ठी' के बहाने कविता में कवि प्रभाकर ने भारतीय नारी के आदर्श का निरूपण किया है। पति के मुँह मोड़ने पर विषम परिस्थितियों में नारी अपने आदर्श और भारतीयता को कैसे सुरक्षित रखती है, इसके लिए कवि ने अच्छा संदेश भी दिया है, अपने भाई और पिता को चिट्ठी लिखती हुई सुखिया कहती है --"सुखिया सुसुकि केऽ चिठिया लिखावे / पेटवा केऽ अगिया आँसू से बुझावे /.......

...... एहवाँ तऽ मजूरी कऽ के लइकन के जिया लेब / तुहरो आ आपन पगरी के रखा लेबऽ / झुके नाहीं देब हम भईया केऽ पगरिया / कब्बो नाहीं धरब हम दूसर डगरिया।"

जीवन और समाज में व्याप्त अनेक

असमानताओं के लिए कवि ईश्वर को जिम्मेदार ठहराते हुए अपने मन की व्यथा कहता है --"संसार केऽ मालिक हे भगवन !तू समदर्शी कहलावलऽ / केहू के सोगहग , केहू के भुरकुसुनी दे के भुलवावलऽ / ....

केहू एगो टेनुआ खातिर सोरह देउकुर पूजवावलऽ / केहू के लइका गँजिया के नसबंदी पात्र बनावलऽ ।"

तुलसीदास जी भी अपनी विनय- पत्रिका के द्वारा ईश्वर से अपने मन की व्यथा कहते हैं।

'लण्ठ' की एक कविता है --"उनकर चोख खपिल्ला बाऽ।"

वर्ष 2002 का सितम्बर या अक्टूबर का महीना और उसकी कोई तारीख - झँगहा में वहाँ के स्थानीय लोगों द्वारा एक कवि सम्मेलन आयोजित किया गया था, आयोजकों में शिवपूजन पटेल मुख्य थे, कवि रामनवल मिश्र उनके प्रेरक थे। मुझे अच्छी तरह से याद है कि मंच पर मुख्य अतिथि के रूप में हरियाणा के राज्यपाल से हट चुके उस समय कांग्रेस के बड़े राजनेता महावीर प्रसाद विराजमान थे। मंच पर प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' के ठीक दाहिने आकाशवाणी के तत्कालीन कार्यक्रम अधिशासी रवीन्द्र श्रीवास्तव उर्फ जुगानी भाई बैठे थे । सरस्वती वंदना हो जाने पर एक या दो कवियों के काव्य- पाठ के तुरंत बाद रवीन्द्र श्रीवास्तव ने संचालक से प्रभाकर धर को बुलाने के लिए कहा और प्रभाकर धर को नेताओं पर व्यंग्य-कविता पढ़ने के लिए कान में इशारा कर दिया। प्रभाकर जी ने पूरी ऊर्जा से नेताओं पर व्यंग्यात्मक -चुटीली कविता पढ़ी थी,अभी आधी कविता ही पढ़ी थी कि महावीर प्रसाद ने मंच पर खड़े होकर कहा था कि -- मुझे पार्टी की अत्यावश्यक मीटिंग में दिल्ली जाना है, मैं चल रहा हूँ।" कुछ देर और रुकने के लिए लोगों के लाख आग्रह के बावजूद तुरन्त मंच से उतर कर चल दिये थे। प्रभाकर धर द्विवेदी का व्यंग्य बहुत ही चुटीला होता था। उस समय काव्य-मंचों से नेताओं पर व्यंग्यात्मक कविताएं पढ़ने का दौर चलता था।

भोजपुरी कविताओं में प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' जैसा मारक व्यंग्य कम ही सुनने को मिलता है। प्रभाकर जी को आकाशवाणी में स्थापित करने वाले जुगानी भाई हैं और दूरदर्शन में स्थापित करने वाले मुखिया जी।

प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' ने जिन कवियों के साथ बार-बार मंच साझा किया था उनमें ब्रजभूषण शर्मा मुखिया जी, रामनवल मिश्र, जुगानी भाई, तारकेश्वर मिश्र राही, कैलाश गौतम, परमात्मा मणि पतंग, कृष्ण मुरारी शुक्ल 'भकोल' , रामाश्रय मिश्र 'उजबक' , धर्मदेव सिंह 'आतुर' , सत्यनारायण मिश्र सत्तन मिसिर, रामाधार पांडेय, जयप्रकाश नायक आदि प्रमुख हैं। गोपाल दास नीरज के साथ भी एक या दो बार मंच से काव्य पाठ किया था।

कवि प्रभाकर धर द्विवेदी जी को एक मलाल जीवन भर रहा, मीठे आक्रोश के द्वारा उसे मेरे सामने मिलने पर अक्सर व्यक्त कर देते थे। घटना 03 नवम्बर 2003 की है , स्थान- स्वावलम्बी इण्टर कॉलेज बिशुनपुरा गोरखपुर का प्रांगण। विद्यालय द्वारा देश के जाने- माने साहित्यकार पं. विद्यानिवास मिश्र को राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा सदस्य मनोनीत किये जाने पर उनके नागरिक अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया गया था । रामनवल मिश्र और प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' दोनों लोग मंच से पं. विद्यानिवास मिश्र जी पर कविता पढ़ना चाह रहे थे। कार्यक्रम का संचालन मैं कर रहा था। मंच पर पं. विद्यानिवास मिश्र के अतिरिक्त सांसद राजनारायण पासवान, विधायक बेचन राम और विद्यालय के तत्कालीन प्रबन्ध संचालक / साधिकार नियन्त्रक /सह जिला विद्यालय निरीक्षक हिफजुर्रहमान आदि अनेक गणमान्य लोग थे। सामने जिले के अति सम्मानित इण्टर कॉलेज के पच्चीसों प्रधानाचार्यो सहित सैकड़ों गणमान्य लोग उपस्थित थे।

प्रोटोकॉल के तहत प्रबंध- संचालक हिफजुर्रहमान और प्रधानाचार्य प्रभुनाथ सिंह 'प्रजेश' ने पूरे कार्यक्रम की रूपरेखा पहले से ही तैयार कर मुझे दी थी, मंच से किसको क्या बोलना है, यह पहले से ही तय था, उसी के अनुसार बँधकर मुझे संचालन करना था। प्रबन्ध संचालक और प्रधानाचार्य द्वारा मुझे दी गयी तय सूची में वक्ताओं में कवि रामनवल मिश्र और प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' का कहीं नाम नहीं था। रामनवल मिश्र जी बचपन में पं विद्यानिवास मिश्र के सहपाठी होने के कारण प्रधानाचार्य पर दबाव डालकर कविता पढ़ लिये ,पर अनेक कोशिशों के बावजूद प्रभाकर जी न मंच पर जा सके और न कविता ही पढ़ सके थे।

न जाने क्यों ?

रामनवल मिश्र जी बड़े कवि थे, पर उस दिन जम नहीं पाये थे। यह कोई बड़ी बात नहीं है, कोई ज़रूरी नहीं कि हर बड़ा कवि, हर बड़े मंच पर जमे ही । दूसरी बात यह भी रही कि श्रोतागण मन से केवल और पं. विद्यानिवास मिश्र जी को सुनना चाहते थे, दूसरे को नहीं। यह भी कारण हो सकता है कि इस दबाव के चलते अन्य को मौका न दिया गया हो।

'प्रोटोकॉल' के तहत मैं अपनी मर्जी से किसी को बुला नहीं सकता था और प्रबन्धक और प्रधानाचार्य ने तय सूची के अतिरिक्त किसी को बुलाने की अनुमति दी नहीं। जबकि इसका ठीकरा प्रभाकर जी ने मुझ पर फोड़ा। वह जीवन पर्यन्त इस बात को कहते रहे कि --"बाबू ! तूऽ चहले रहतऽ, तऽ हम पं. विद्यानिवास मिश्र जी के सामने कविता पढ़ि लिहले रहतीं।' लेकिन मैं इसमें भला क्या कर सकता था, मैं स्वतन्त्र नहीं था। मेरे गाँव के सुनील कुमार यादव ने 2020 में मेरे साथ चलकर प्रभाकर धर द्विवेदी से मिलने की और मिलकर बातचीत की विडियो यादगार के रूप में चाहते थे, इसका विडियो शायद उनके पास है। वही कवि जी से अन्तिम मुलाकात रही। उसके बाद फिर कभी प्रभाकर धर द्विवेदी से भेंट नहीं हो सकी।

बहरहाल प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' उस दिन मंच से पं. विद्यानिवास मिश्र जी पर जो

कविता पढ़ना चाहते थे, उसे यहाँ इस आलेख में मैं हूबहू प्रस्तुत कर रहा हूँ --

"बड़ी सुखद अनुभूति हुई है,आज पास में आकर / हम विभोर हैं, गर्वोन्नत हैं अपना सोना पाकर / धन्य हुई माटी कछार की, जिसने जन्म दिया है / देश-विदेश अनेक पदों पर जिसने सुयश किया है / नाम का अर्थ यथार्थ बनाकर जिसने काम किया है / गोरखपुर के इस दोआब का जिसने नाम किया है / स्वागत और सम्मान समर्पित इसे आप अपनायें / जन्मभूमि की माटी पर अपना स्नेह लुटायें / मैं भी आपसे आशीर्वाद चाहता,ऐसी इक आशा है / तनिक प्रबुद्ध नहीं हूँ ,तब भी यह अभिलाषा है।"

इन काव्य-पंक्तियों में प्रभाकर धर द्विवेदी ने पं. विद्यानिवास मिश्र जी के प्रति पूरी ईमानदारी से यथोचित श्रद्धा निवेदित की है। भारतीय मनीषा के साकार विग्रह पं. विद्यानिवास मिश्र की पुण्यतिथि 14 फरवरी को और कवि प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ' की पुण्यतिथि 12 फरवरी को है, अतः श्रद्धांँजलि स्वरूप उक्त कविता को यहाँ देना उचित लगा है।

"भागीरथी सांस्कृतिक मंच" के संस्थापक सत्य नारायण 'पथिक' ने गोरखपुर में वर्ष 2018 में प्रभाकर धर द्विवेदी 'लण्ठ को "भोजपुरी रत्न से सम्मानित किया था, इससे प्रभाकर धर जी हमेशा गदगद रहते थे। इसका मैं साक्षी हूँ। कवि- मन तो सम्मान का ही भूखा होता है। 'पथिक' जी और उनकी संस्था को इस आलेख के माध्यम से भी हार्दिक धन्यवाद।

1990 में मैंने नयी दिल्ली की यात्रा का एक रोचक संस्मरण लिखित रूप में प्रभाकर जी को सुनाया था, उस संस्मरण की चर्चा प्रभाकर जी ने बहुतों से बहुत दिनों तक की। उनके पुत्र मन्नन इधर दो- तीन बार कह चुके कि-"बाबू जी आपके दिल्ली वाले संस्मरण की चर्चा सबसे करते थे।" प्रभाकर जी शुरू से ही मेरे गद्य लेखन के प्रशंसक थे। अफसोस ही रहा, उनके जीते जी उन पर कुछ नहीं लिख सका। यह संस्मरण लिख कर मन कुछ हल्का हुआ।

विज्ञान व्रत की 3 ग़ज़लें

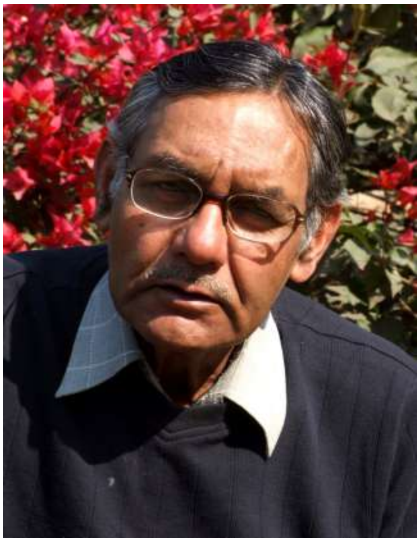

1

वो तब तक दरिया न हुआ
मैं जब तक सहरा न हुआ

वो जब तक मेरा न हुआ
मैं ख़ुद भी अपना न हुआ

ख़ुद से भी मिलना न हुआ
लेकिन मैं तनहा न हुआ

दुनिया मैं क्या - क्या न हुआ
मैं उसकी दुनिया न हुआ

मैं अब तक ख़ुद - सा न हुआ
यह होना होना न हुआ

2

वो सितमगर है तो है
अब मेरा सर है तो है

आप भी हैं मैं भी हूँ
अब जो बेहतर है तो है

जो हमारे दिल में था
अब ज़बाँ पर है तो है

दुश्मनों की राह में
है मेरा घर है तो है

एक सच है मौत भी
वो सिकन्दर है तो है

पूजता हूँ बस उसे
अब वो पत्थर है तो है

3

चेहरे पर मुस्कान रखूँ
क्यों फ़ानी पहचान रखूँ

जो तेरा अरमान रखूँ
ऐसी क्या पहचान रखूँ

पहचानूँ इस दुनिया को
पर ख़ुद को अंजान रखूँ

खो जाऊँ पहचानों में
क्यों इतनी पहचान रखूँ

मैं हूँ मन है दुनिया भी
अब किस - किसका ध्यान रखूँ

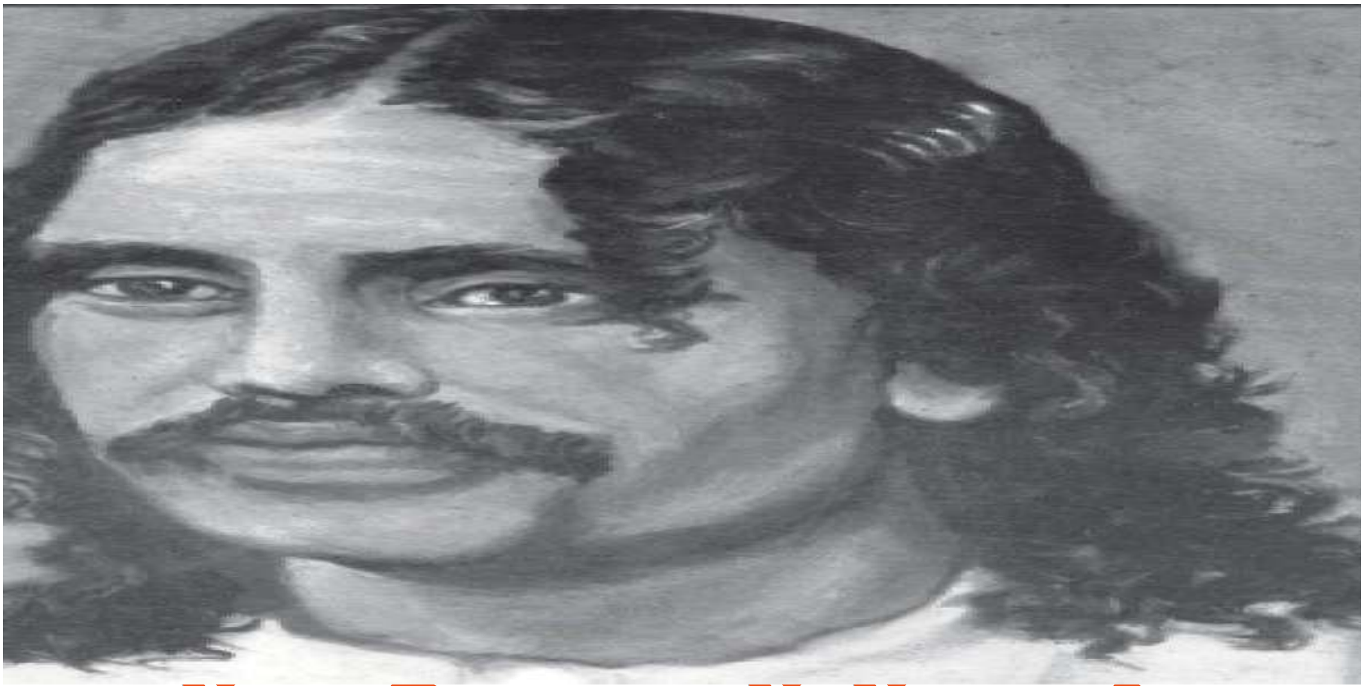

भारतेंदु की ग़ज़लों में राष्ट्रीयता

-डॉ.जियाउर रहमान जाफ़री

भारतेंदु का जन्म 1850 में और मृत्यु 1885 में हुई। कहने का अर्थ यह है कि भारतेन्दु ने जिंदगी के सिर्फ पैंतीस वसंत देखे। जैसा कि तुलसी के बारे में कहा जाता है कि वह जन्म के साथ राम -राम बोलने लगे थे इसलिए उनके बचपन का नाम ही रामबोला पड़ गया। वो स्थिति भारतेंदु के साथ नहीं रही होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य रचना करने के लिए भारतेन्दु के पास मुश्किल से उनीस- बीस वर्ष रहा होगा। इसी उन्नीस से बीस सालों में उन्होंने गद्य -पद्य की शायद ही कोई विधा हो जिसमें अधिकारपूर्वक न लिखा हो। उन्होंने साहित्य में कई नई और मर चुकी विधाओं को पुनः जीवित किया। दूसरी भाषाओं से अनुवाद करते हुए उन्होंने हिंदी की समृद्धि की। सिर्फ साहित्य ही नहीं उन्होंने धर्म पर भी लिखा रीति- रिवाज और समकालीन बुराइयों पर भी खुलकर अपनी बातें रखी। कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया, साथ ही कई संगठन की स्थापना की। यह उनका प्रभाव था कि उनकी मृत्यु के बाद भी रामलीला मंडली, हिंदी नाट्य समिति, भारतेंदु नाटक मंडली और काशी नागरिक नाटक मंडली जैसी संस्थाएं खुलती रहीं।

भारतेंदु के पूरे साहित्य में जो सबसे बड़ी चिंता है वह सामाजिक कुरीतियों और देश की स्वाधीनता को लेकर है। उनमें धर्म के प्रति भी भक्ति हैं, लेकिन यह इबादत भी देशभक्ति से जुड़ी हुई है। भारतेंदु का समय नवोत्थान का समय था। भारत गुलामी का दंश झेल रहा था, और समाज में भांति -भांति की बुराइयां प्रचलित थीं। देश की बड़ी आबादी बिना वस्त्र और भोजन के दिन गुज़ार रही थीं। और देश की महत्वपूर्ण निधियां विदेशों में जा रही थीं। धर्म के नाम पर पूरी तरह से पाखंड चल रहा था। भारतेंदु का दिल यह सब देखकर तड़प रहा था। उन्होंने अपने तेरह नाटकों में से लगभग नौ नाटकों में इसी सामाजिक बुराई पर कटाक्ष किया है। 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' से लेकर 'भारत- दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' इसके उदाहरण हैं। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में भारतेंदु सिर्फ सत्य का पाठ नहीं पढ़ाते बल्कि यह बताते हैं कि राजा का धर्म क्या होना चाहिए और जब राजा अपने धर्म का निर्वाह ठीक तरह से नहीं कर पाता है तो वहां से भलाई रुखसत हो जाती है। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक का एक ऐसा ही पात्र कहता है- 'मरे रे मरे.... जले रे जले.. कहां जाएं सारी पृथ्वी तो हरिश्चंद्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर नहीं सकते।'

यह ऐसा समय है जहां का सम्राट एक ऐसा ब्रिटिश शासक बना हुआ है जिसके पास न धर्म है ना इंसानियत। भारतेंदु अपने नाटक अंधेरी नगरी में इसी अन्यायी राजा को फांसी के फंदे पर लटका कर यह सिद्ध करते हैं कि एक दिन ऐसे चौपट राजाओं से मुक्ति मिल कर रहेगी, जो राजा गुनाहगार को नहीं कारीगर, चूने वाले, भिश्ती, कसाई आदि को दंड के लिए चुनता है। ऐसा नहीं है कि भारतेंदु की कथनी और करनी में फर्क है। वो

सिर्फ लिखते नहीं करके भी दिखाते हैं इसलिए उन्होंने अंग्रेज की ऑनरेरी मजिस्ट्री छोड़ दी थी।

भारतेंदु जिस समाज में जी रहे थे। उस समाज की स्त्रियां हाशिये पर थीं। भारतेंदु को पता था कि जिस समाज की स्त्री मुख्यधारा में शामिल नहीं होती वह समाज कभी तरक्की नहीं कर पाता। इसलिए भारतेन्दु अपने नाटकों में स्त्री की दीन- हीन दशा का वर्णन न कर उसे एक मजबूत कड़ी के रूप में दिखाते हैं। उनके नाटक 'नील देवी' की क्षत्राणी वीरता की मिसाल पेश करती है। भारतेंदु का मन करता है कि भारत की नारी भी अंग्रेजों की तरह शाना ब शाना खड़ी रहें। वो लिखते हैं- 'जब मुझे अंग्रेज रमनी निज निज पति गण के साथ प्रसन्न वदन इधर से उधर फर फर पुतली की भांति फिरती हुई दिखलाई पड़ती हैं। तब इस देश की सीधी साधी स्त्रियों की अवस्था का स्मरण हो आता है और यही बात मेरे दुख का कारण बनती है।'

भारतेंदु का स्पष्ट मानना है कि नारी जाति के उद्बोधन के बिना राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है। भारतेन्दु न स्त्री की दुर्दशा देखने के कायल हैं और न वह भारत के ऐसे हालात को बर्दाश्त कर रहे हैं। 'हा हा भारत दुर्दशा नहीं देखी जाई' लिखकर वह अपनी चिर तकलीफ का बयान करते हैं। शायद यही कारण है कि डॉ श्यामसुंदर दास, हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना का आरंभ भारतेंदु के नाटक 'भारत दुर्दशा' से मानते हैं। भारतेंदु में देशभक्ति इतनी गहरी है कि वह देश के लिए तलवार उठाने पर भी आमादा हो जाते हैं और 'उठहु वीर तरवार खींचि' की घोषणा कर देते हैं। उन्हें पता है कि देश की परतंत्रता का सबसे बड़ा कारण आपसी मतभेद है, और बिना इसे दूर किए ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेना संभव नहीं है। भारतेंदु की बहुत सारी कविताएं हैं जिसमें वह राष्ट्रीय एकता पर बल देते हैं-

'इनसौ कछु आसा नहिं यह तो सब विधि बुधि बल हीन

बिना एकता बुद्धि कला के भए सब ही विधि दीन'

इसके लिए भारतेंदु चीख -चीख कर जगाते हैं उन्हें पता है कि अगर हम सोए रह गए तो फिर जाग नहीं पाएंगे। उन्हें हैरत है कि भारत डूब रहा है और हम सुख के नींद ले रहे हैं। ऐसे में भारतेंदु जागरण के गीत गाते हैं-

'डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो

आलस सब एहि दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो'

भारतेंदु जानते हैं कि हमारे देश की सभ्यता सब देशों से ज्यादा विकसित थी। ऐसा भारत आज कहां पहुंच गया है-

''जो भारत जग में रहौ सब सों उत्तम देश

ताही भारत में रहों अब नहिं सुःख को लेसा''

भारतेंदु ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह ऐसी कृपा करें कि भारत के पुराने दिन लौट आएं-

'जागो जागो अब सांवरे

सब कोउ रुख तुमरो ताकत'

भारतेंदु का जन्म बनारस में हुआ था। बनारस सदा से ही धर्म और दर्शन का महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यह अलग बात है कि बनारस की जमीन में धर्म के नाम पर ठग और पाखंड भी खूब देखे हैं। बनारस साहित्य का केंद्र भी रहा है वर्ग भाषा को लोकप्रिय बनाने में बनारस के साहित्यकारों की महती भूमिका रही है। भारतेन्दु पर इस माहौल का प्रभाव पड़ा और उनके अंदर बाल्यावस्था से ही साहित्य के बीज फूटने लगे। भारतेन्दु एक साहित्यकार के साथ समाज सुधारक भी थे यह अलग बात है कि उनके साहित्य के आगे उनके सोशल रिफॉर्मर का रूप दब सा गया है। उन्होंने वाराणसी की धर्म नगरी में रहकर भी धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास की आलोचना की। कट्टर वैष्णव होने के बावजूद उन्होंने वैष्णव धर्म के दोष बताए। बाल विवाह का विरोध किया। स्त्री शिक्षा पर उनका हमेशा ध्यान रहा है। यहां तक कि उन्होंने बालिकाओं के लिए स्कूल भी खोले, जो आज हरिश्चंद्र डिग्री कॉलेज के नाम से जाना जाता है। अपने बनारस के बारे में उन्होंने लिखा है कि-

'बनारस की ज़मीं नाजां हैं जिसकी पायबोसी पर

अदब से जिसके आगे चर्ख ने गर्दन झुकाई है'

भारतेंदु ने लिखने के साथ लेखकों को बनाने का भी काम किया। हरिश्चंद्र पत्रिका ने भारतेंदु युग के कई लेखकों का निर्माण किया। भारतेंदु एक देशभक्त साहित्यकार थे। देश की दुर्दशा से उनका भी हृदय क्षुब्ध होता था। देश की गौरव- गाथा कहने वाले प्रतीक चिह्न उन्हें दुख पहुंचाते थे-

''हाय पंचानद हा पानीपत

अजहुं रहे तुम धरनि विरात''

भारतेंदु देश की तरह निज भाषा का भी सम्मान करते थे। वह चाहते थे कि निज भाषा राजकाज की भाषा बने। निज भाषा से उनका मतलब हिंदी भाषा से था। वो हिंदी के पक्षधर थे, जबकि हिन्दी उनकी मातृभाषा नहीं थी।

उन्होंने उर्दू -फारसी का भी अध्ययन किया था। भारतेंदु हिंदी को उर्दू से अलग कर नहीं देखते थे एक जगह उन्होंने लिखा है- हिंदी और उर्दू में अंतर क्यों है? हम बिना संकोच के उत्तर देते हैं भाषाओं में अंतर नहीं है क्योंकि व्याकरण के व्यक्तियों और नियम दोनों के एक हैं। हिंदी और उर्दू ही नहीं भारतेन्दु हिंदू और मुसलमान को भी एक नजर से देखते थे। उन्हें पता था देश को मजबूती तभी मिलेगी जब यह दोनों संप्रदाय एक दूसरे के निकट आएंगे। बलिया के एक ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने कहा था- यह समय इन झगड़ों का नहीं है हिंदू जैन मुसलमान सब आपस में मिलिए। यहां तक कि उन्होंने मुसलमानों से खासतौर से अपील की थी- 'ऐसी बातें जो हिंदुओं का जी दुखाने वाला हो न करें.. चलो हिंदुओं के साथ तुम भी दौड़ो एक - एक दो होंगे। अपने लड़कों को अच्छी तालीम दो पेंशन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो।

आज धर्म के नाम पर जितनी नफरत है। भारतेंदु धर्मों के बीच उतनी ही मोहब्बत बढ़ाने का प्रयत्न करते थे। गुणाकर मुले की मानें तो- "भारतेंदु इस्लाम के प्रशंसक थे पर यह भी सच है कि उनकी कृतियों में यत्र तत्र कुछ ऐसे कथन मिलते हैं जिससे मुसलमानों की भावना को कुछ चोट पहुंच सकती है। पर हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारतेंदु बुनियादी तौर पर समन्वयवादी थे।"

वास्तव में भारतेंदु में दूरदर्शिता की कोई कमी नहीं थी। वह एक सजग लेखक थे, जो अपने वक्त और हालात से मुंह मोड़ कर नहीं रह सकते थे। उन्होंने अपने गुरु राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की तरह अंग्रेजों की चापलूसी और बखान नहीं किया। हां अंग्रेजों की कुछ चीजें हैं जो उन्हें अच्छी लगी तो उन्होंने उसकी तारीफ की लेकिन कहीं से इसे राजभक्ति की संज्ञा नहीं दी जा सकती। अगर

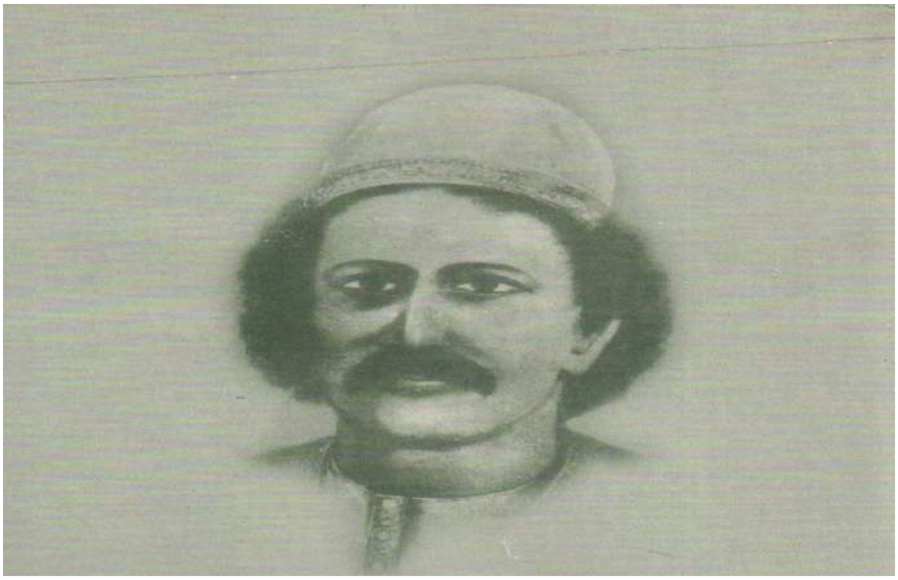

उनमें राज भक्ति होती तो वह ऐसा नहीं लिखते जैसा उन्होंने 26 फरवरी 1874 के कवि वचन सुधा में लिखा था- 'क्या यह अनीति नहीं है कि अनुमानतः दो सौ वर्ष हुए इनका अधिकार किस देश में है। उन्होंने हमारे धन- धान्य की वृद्धि में कोई उपाय नहीं किया। केवल अपनी भाषा सिखाई और सब व्यापार और धन अपने हस्तगत किए।

अंग्रेजों ने सबसे पहले भारत के फलते- फूलते कपड़ा उद्योग और कृषि को अपना निशाना बनाया। भारतेंदु उनकी बुरी नियत जानते थे इसलिए उन्होंने जनता से विलायती कपड़े पहनने की अपील की वह चाहते थे कि लोग हिंदुस्तानी कपड़े पहने। कवि वचन सुधा में उन्होंने स्पष्ट लिखा- "हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़े न पहनेंगे और जो कपड़ा पहले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास है उनको तो नष्ट हो जाने तक काम में ला देंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भांति का भी विलायती कपड़े न पहनेंगे। हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा पहनेंगे।" कहना ना होगा गांधी ने जिस खादी और देसी उद्योग की बात की थी भारतेंदु उसे पहले ही उठा चुके थे। असल में अंग्रेज हम भारतीयों पर अपना लिबास अपनी भाषा अपना रहन सहन अपनी संस्कृति को लादना चाहते थे ताकि भारत का अंग्रेजीकरण हो सके और यहां का उत्पादन आसानी से इंग्लैंड जा सके। भारतेंदु ने अंग्रेजों की इस धूर्तता का पहले ही पर्दाफाश कर दिया था। उन्हें पता था कि अंग्रेजों की यह कूटनीति बहुत दिनों तक चलने वाली नहीं है। उन्होंने 1874 में ही यह घोषणा कर दी कि अंग्रेज इस देश को छोड़कर एक दिन भागेगा। 6 जुलाई 1874 के कवि वचन सुधा में वह लिखते हैं- आज जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेषित होकर स्वाधीन हुई वैसे भी भारतवर्ष भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है।

भारतेंदु का हृदय देश की दशा पर दुखी था। भारतेंदु जहां अंग्रेजों की खबर लेते हैं वही देश के लोगों की अकर्मण्यता और काहिलीपन पर भी सवाल खड़े करते हैं। वह भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह उसकी बुजदिली और काहिली को दूर कर दे -

"डूबत भारत नाम बेगी जागो अब जागो
आलस सब एही दहन हेतु चहु दिसि सों जागो।"

भारतेंदु उसे जगाते हैं जो आराम से सोए हुए हैं, भले देश जल रहा हो। भारतेंदु उन्हें भी पहचानते हैं जो देश में फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं और राजसत्ता उनकी फूट

भारतेन्दु जी

पड़ने से खुश हो रही है। सीधी सी बात है उससे उनकी कार्य सिद्धि हो रही है -

"बैर फूट ही सो भयो सब भारत को नास
तबहु न छाडत महि सब बंधे मोह के फांस"

भारतेंदु का प्रसिद्ध प्रसन्न अंधेर नगरी भी इसी जड़ता को केंद्र बिंदु बनाकर लिखा गया था। यहां जिस शासक का जिक्र है वह कोई और नहीं अंग्रेज है, और टके सेर में सब कुछ ले लेने वाले आलसी हम सब भारतीय हैं। पूरा नाटक समाजिक कुरीतियों, कुप्रथा, मूर्खता और विदेशी सम्राट की धांधली पर करारा प्रहार करता है। भारतेंदु ऐसे लोगों के लिए बार- बार उद्बोधन के गीत गाते हैं-

'जागो जागो रे भाई
सोबत निसि बैस गंवाई
जागो रे भाई
निसि को कौन कहै दिन बीत्यो काल रीति चली आई'

यह सिर्फ एक रात की बात नहीं है हम युगों-युगों से सोए पड़े हैं। भारतेन्दु बार- बार सुषुप्तावस्था के बीच चेतना जगाने का काम कर रहे हैं।

भारतेंदु ने मात्र कविता, नाटक, प्रहसन, भाण, मुकरी स्यापा, मुक्तक, लेख, भाषण आदि से ही देशभक्ति जताते हैं बल्कि उनकी ग़ज़लों में भी यही ललकार है। यह अलग बात है कि भारतेंदु की ग़ज़लों को लेकर अब तक स्वतंत्र मूल्यांकन नहीं हो सका। बस जहां जरूरत पड़ी जिक्र भर कर दिया गया।

भारतेंदु हिंदी में ग़ज़लें रसा के तखल्लुस (उपनाम) से लिखते थे। यानी उनका पूरा नाम शायरी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र रसा था। हिंदी में ग़ज़ल की शुरुआत को लेकर विद्वानों के अलग- अलग विचार हैं। आलोचक का एक वर्ग अमीर खुसरो दूसरा कबीर तो तीसरा भारतेन्दु या निराला को हिंदी का पहला ग़ज़लकार मानता है। वस्तुस्थिति जो भी हो हिंदी गजल को वास्तविक रूप में रखने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उसे स्थापित करने का श्रेय दुष्यंत कुमार को जाता है। अगर दुष्यंत ने होते तो आज हिंदी गजल जहां है वहां नहीं होती, जैसा कि रोहिताश्व अस्थाना का भी कथन है कि- "व्यापक स्तर पर हिंदी ग़ज़ल का विकास सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और दुष्यंत के समय से ही हुआ, किंतु स्फूट रूप में गज़ल के तत्व हिंदी पद साहित्य के इतिहास में पूर्व भारतेन्दु युग से ही मिलते रहे हैं।"

भारतेंदु की नजरों में तीन सवाल मूल रूप से दिखलाई पड़ते हैं। उनकी अधिकतर गजलें प्रेम संबंधी है इसमें व्यक्तिगत प्रेम भी है और राष्ट्रप्रेम भी। दूसरे प्रकार की गजलों में व्यंग्य की प्रवृत्ति पाई जाती है और तीसरे प्रकार की वह गजलें हैं जिसमें सामाजिकता के दर्शन होते हैं। हिंदी ग़ज़ल परंपरा में भारतेंदु की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में उर्दू बहरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया है। रोहिताश्व अस्थाना मानते हैं कि उनकी नजरों में प्रेम की मधुर चासनी टपकी पड़ती है। भारतेंदु की एक ग़ज़ल में महारानी विक्टोरिया के गुणों का बखान किया गया है साथ ही उनके भारत आगमन पर मुबारकबाद दी गई है-

"उसको शहंशाही हर बार मुबारक होवे
केसर ए हिंद का दरबार मुबारक होवे
बाद मुद्दत के हैं देहली के फिरे दिन यारब
तख्ते ताऊस तिलाकार मुबारक होवे
बागबाँ फूलों से आबाद रहे शहने चमन
बुलबुलों गुलशन ए बेखार मुबारक होवे
जम्ज़मो में तेरे बस कर दिए लब बंद रसा
यह मुबारक तेरी गुफ़्तार मुबारक होवे।"

हम जानते हैं कि महारानी विक्टोरिया का भारत के प्रति नजरिया कुछ अलग तरह का था। उन्हें भारत की चीजें पसंद थीं। वह भारत की खबर रखती थीं। उन्हें यहां के मसाले अच्छे लगते थे, वह विवाह के बाद भी पति को राजकाज से दूर रखती थीं और भारत में मुंशी अब्दुल करीम से उनके रागात्मक संबंध प्रायः चर्चा में रहते थे।

भारतेंदु आधुनिक युग के प्रवर्तक थे भारतेंदु ने साहित्य की लगभग हर विधाओं में लेखन की और साहित्य की लगभग तमाम रसों का आस्वादन कराया। वे जब नाटक लिखते हैं तो उनमें राष्ट्र भावना होती है उनके निबंधों में सामाजिक सुधार का जिक्र रहता है। कविताओं में जहां असंतोष और भक्ति भावना है। वहीं जब वह गजल लिखते हैं तो उसमें प्रेम का स्वर सर चढ़कर बोलता है। जाने -माने ग़ज़ल आलोचक ज्ञानप्रकाश विवेक की मानें तो- "हरिश्चंद्र भारतेंदु की गजलें बेशक प्रेम परक है लेकिन गज़लीयत लोच और नाद सौंदर्य उत्तम है।"

भारत पर परतंत्रता की बेड़ियों है। यहां के कच्चे माल इंग्लैंड जा रहे हैं। भारतीयों को न खाने का अन्न और न पहने का वस्त्र है। ऐसे में भारतेंदु का दिल कलपता है और उनके ग़ज़ल यों मुकम्मल होती है-

'आ गई सर पर कजा तो सारा सामां रह गया
ऐ फलक क्या-क्या हमारे दिल में अरमां रह गया
बागबां है चार दिन की बागे आलम में बहार
फूल सब मुरझा गए खाली बयांबां रह गया

इतना एहसां और कर लिल्लाह ऐ दस्ते जुनूं
बाकी गरदन में फकत तारे गिरेबां रह गया'

शायद ही किसी ने परतंत्र भारत में इस तरह की गजलें लिखी हों। भारतेंदु पहले शायर हैं जो अंग्रेजी राज्य में अंग्रेज संबोधन के साथ गजलें कविताएं और मुकरियां लिखते हैं। उनका दिल देश की हालत देखकर मायूस है. ऐसे में वह मजीद सताने से मना करते हैं-

'दिल आतिशे हिजरां से जलाना नहीं अच्छा
ऐ शोला रुखो आग लगाना नहीं अच्छा
सोने दो शबे वसले गरीबां है अभी से
ऐ मर्ग ठहर जा अभी आना नहीं अच्छा'

ब्रिटिश साम्राज्य का सारा ध्यान अपनी तरफ है.

ऐसे में भारतेंदु शेर लिखते हैं-

'उठाकर नाज़ से दामन भला किधर को चले
इधर तो देखिए बहर -ए- खुदा किधर को चले'

वह हुकूमत को चैलेंज देते हैं और माज़ी की याद कराते हैं कि-

'या चार दिन के तमाशे हैं आइ दुनिया के
रहा जहां में सिकंदर ना और ज़म बाकी'

भारतेंदु अपनी ग़ज़लों में अंग्रेज शासकों के लिए मसीहा शब्द का व्यंग्यात्मक प्रयोग करते हैं-

'सैकड़ों मुर्दे जलाए ओ मसीहा नाज़ से
मौत शर्मिंदा हुई क्या क्या तेरे एज़ाज़ से'

भारतेंदु युग जिसे नवजागरण काल के नाम से भी पुकारा जाता है। भारतेंदु के पूर्व के साहित्य का अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि मूलतः उसमें कविताओं की ही प्रचुरता है। लेकिन भारतेन्दु युग में गद्य और पद्य की तमाम विधाएं अपना स्थान बना पाती हैं। पत्रकारिता रिपोर्ताज, पत्र, यात्रा वृतांत आदि विधाएं खालिस भारतेंदु युग की देन है। काव्य के क्षेत्र में भी पुरानी शैलियां ध्वस्त होती हैं और नई नई विधाओं का जन्म होता

है। कविता की पारंपरिक वस्तु बदलती है बल्कि कथ्य, छंद शिल्प में भी परिवर्तन आते हैं। दोहा, कवित्त, छप्पय, सवैया, कुंडलियां यह सभी भारतेंदु के प्रिय छंद हैं। वह ग़ज़ल के अलावा ठुमरी, कजली, लावणी, रेखता, दादरा आदि की भी रचना किया करते थे। उनके समय में प्रेमघन जहां रोला, दोहा और सवैया लिख रहे थे, तो प्रताप नारायण मिश्र कवित्त, कजली और ग़ज़ल की तरफ मुखातिब थे। इस प्रकार पूरा भारतेंदु युग छंदों के प्रयोग में जी रहा था। सबसे बड़ी बात इस तरह से खड़ी बोली का विकास हो रहा था। जहां तक बात भारतेंदु के ग़ज़ल की है, डॉ. इंद्र नारायण सिंह का साफ अभिमत है कि खड़ी बोली हिंदी में ग़ज़ल लिखने का श्रेय भारतेन्दु को ही जाता है। कहते हैं कि भारतेंदु ने देवनागरी लिपि में गुलजार ए पुरवहार नाम का एक ग़ज़ल संग्रह भी प्रकाशित कराया था पर वह अब अप्राप्त है। आज भारतेंदु के ग़ज़लों को लेकर जो शोध हो रहे हैं वह ग़ज़लें भारतेंदु ग्रंथावली या इंद्रसभा नाटक आदि में यत्र तत्र मौजूद है।

भारतेंदु की नजरों में जितनी गहराई है उतनी ही गज़लियत भी। उनकी कविताओं में जहां प्रेम का गहरा रंग है, वहीं उनकी ग़ज़लों में इश्के मिजाजी के साथ इश्के हकीकी भी है। भारतेंदु का प्रेम देश के प्रति भी है, और व्यक्ति तथा समाज से भी मुख़ातिब है। वो उदाहरण देकर बताते हैं कि जहां सिकंदर जैसा शक्तिशाली सम्राट रबाना हो गया वहां और लोगों की क्या बिसात है?

'आज तक आईना वश हैरान है इस फिक्र में
कब यहां आया सिकंदर और रवाना हो गया'

बाबू भारतेन्दु पर पारसी रंगमंच का भी प्रभाव था। उन्होंने अपनी कई कविताओं में कसीदे वाली शैली भी अपनाई है-

'आज यह फतेह का दरबार मुबारक होए
मुल्क ये तुझको शहरयार मुबारक होए'

भारतेंदु अपनी ग़ज़लों में परतंत्रता के कई चिह्न अथवा प्रतीक योजना का इस्तेमाल करते हैं। कफ़स, सैयाद बुलबुल, परवाना ऐसे ही प्रतीकात्मक शब्द हैं। इन शब्दों से बने अशआर उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते हैं-

'रिहा करता नहीं सैयाद हमको मौसम ए गुल में
असराने कफस लो तुमसे अब रुखसत हमारी है'

'जान दी आखिर कफ़स में अंदलीबे जार ने
मुजदहे सैयाद वीरांआशिकाना हो गया'

'फसलें गुल में रिहाई की न कुछ सूरत हुई
क़ैद में सैयाद मुझको एक जमाना हो गया'

ग़ज़ल के मिजाज के बारे में महेश अग्रवाल ने लिखा है कि दरअसल ग़ज़ल विश्व बंधुत्व की भावना का प्रचारक भी रहा है, तथा जियो और जीने दो का संदेशवाहक भी....यह संकीर्णता से ऊपर उठकर शांति और सद्भाव की महत्ता स्थापित करने का भरसक प्रयास करता है। भारतेंदु भी यही कार्य करते हैं-

'दिल आतिशे हिजरां से जलाना नहीं अच्छा
ऐ शोला रुखों आग लगाना नहीं अच्छा'

'जहां देखो वहां मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है
उसी का सब है जलवा जो जहां में

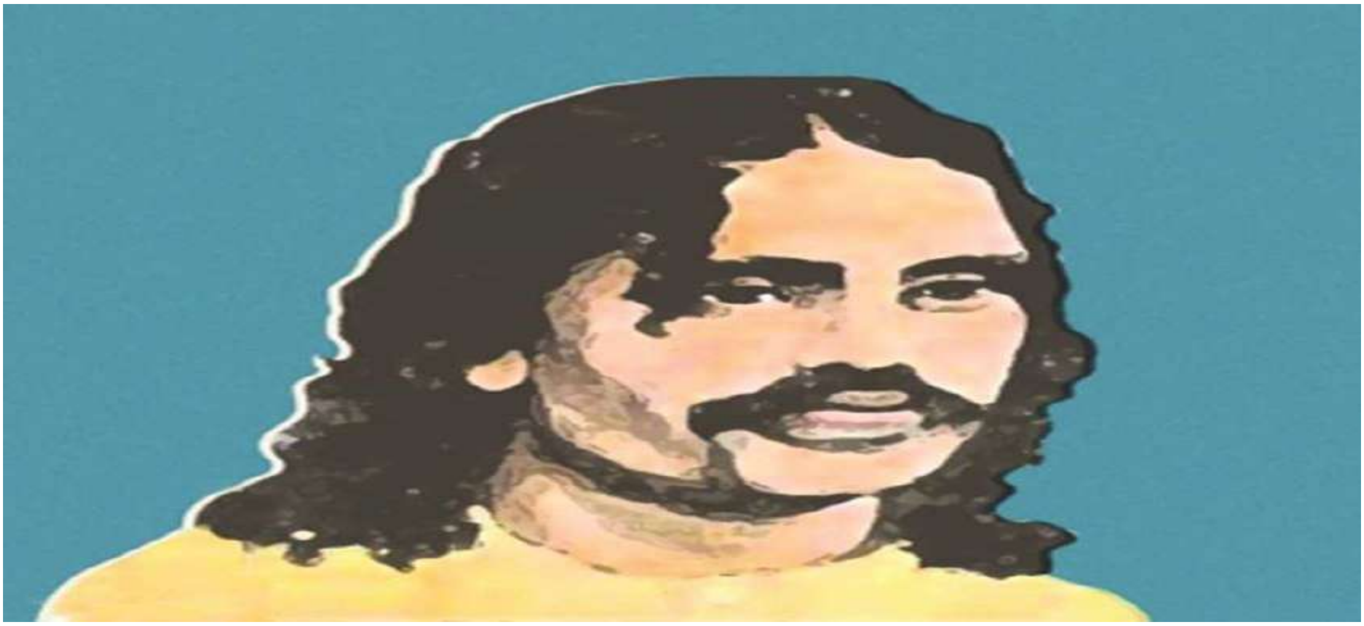

आशकारा है'

भारतेंदु की ग़ज़लों की यह खूबी है कि तमाम आलोचकों को भारतेंदु के अलग-अलग तेवर पसंद आते हैं। विनीता गुप्ता की मानें तो उर्दू गजल के समानांतर कबीर और अमीर खुसरो से लेकर आज तक हिंदी ग़ज़ल की परंपरा चली आ रही है। भारतेंदु युग की इन हिंदी गजल में उर्दू शब्दों और मुहावरों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

डॉ जयराम सूर्यवंशी के विचार भी कुछ ऐसे ही हैं- भारतेंदु युग की ग़ज़लों में भारतीय जनजीवन एवं हिंदी मुहावरों का प्रयोग हुआ है।

सच तो यह है कि भारतेन्दु के समय में देश का माहौल कुछ ऐसा है कि लेखक को रंग और नूर के त्यौहार होली में भी उनका दिल नहीं लगता-

''नहीं यह है गुलाल सुर्ख़ उड़ता हर जगह प्यारे

यह आशिकी है आहे यार आतिश बार होली में

भारतेंदु वह शायर हैं जो सच को सच और झूठ को झूठ मुंह पर बोलने का साहस रखते हैं-

'सैकड़ों मुर्दे जलाए और मसीहा नाज़ से

अब खुले पर भी तो वाकिफ नहीं परवाज़ से'

'फिर यह भी कहते हैं'

फंदे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता

इस गुलशन ए आलम में भी बिछा दाम है प्यारे'

भारतेंदु के शायरी में कत्ल, कफस, पिंजरा, फंदा, क़ज़ा (मौत) गिरेबां, जैसे शब्द बार-बार इस्तेमाल होते हैं यह वह शब्द है जो कहीं हमारी दास्ता का तो कहीं हमारी निर्वलता का प्रतीक है। भारतेंदु के कुछ शेर देखे जा सकते हैं-

'वह गैरों की अदा से क़त्ल जब बेबाक करते हैं

तो उसकी तंग को हम आह किस हैरत से सकते हैं

उड़ा लाए हो यह तर्जे सुखन कैसे बताओ तो

दमे तकदीर गोया बाग में बुलबुल चहकते हैं'

'आ गई सर पर कजा लो सारा सामां रह गया

ऐ फलक क्या-क्या हमारे दिल में अरमां रह गया

बागबां है चार दिन की बागे आलम में बहार

फूल सब मुरझा गए खाली बयाबां रह गया

इतना एहसां और कल लिल्लाह ऐ दस्ते जुनूं

बाकी गर्दन में फकत मेरे गिरेबां रह गया'

शायर इस गुलामी के पंजे से निकल जाने की जद्दोजहद करता है-

'रिहा करता है सैयादे सितमगर मौसम ए गुल में

असीराने कफस तुमसे अब रुखसत हमारी है'

शायर ऐसे ही सितमगर के लिए जल्लाद शब्द का इस्तेमाल करता है। शायद इससे उपयुक्त और कोई शब्द

हो भी नहीं सकता-

'सफाई देखते ही दिल धड़क जाता है ऐ बिस्मिल

अरे जल्लाद तेरे तेग की क्या आबदारी है'

1867 में महारानी विक्टोरिया का आगमन होता है। भारतेंदु को भरोसा है कि विक्टोरिया के शासन में परिस्थितियां बदलेंगे इसलिए वह उन्हें मुबारकबाद भी देते हैं-

'उनको शहंशाही हर बार मुबारक होवे

कैसरे हिंद का दरबार मुबारक होवे'

पर उनका यह भ्रम जल्दी ही टूट जाता है-

'रिहा करता नहीं सैयाद हमको मौसम ए गुल में

कफ़स में दम जो घबराता है सर दे दे पटकते हैं'

'जान दी आखिर कफ़स में अंदलीबे जार ने
मुज़्दा है सैयद वीरां आशियाना हो गया
ख्वाबे गफलत से जरा देखो तो कब चौके हैं हम
काफिला मुल्के अदम का जब रवाना हो गया
फसले गुल में भी रिहाई की कोई सूरत नहीं
कैद मे सैयाद मुझको एक जमाना हो गया'

आखिर हमारी अपनी मिट्टी खुद से ही हमें कैसे अलग कर सकती है। शायर बस इतना ही इल्तज़ा करता है-

'पसे मुर्दन तो रहने दे ज़मीं पर ऐ सबा मुझको
कि मिट्टी खाकसारों नहीं बर्बाद करते हैं'

पिंजरे में बंद शायर तड़पता है और चिड़िया को प्रतीक बनाकर अपने दिल की बात करता है- कफ़स में अब तो सैयाद अपना दिल तड़पता है। फिर अंग्रेजों की जुल्मो सितम का पर्दाफाश वो जिस तरीके से करते हैं वो भी देखने लायक़ है -

'रहे ना एक भी बेदाग गर सितम बाकी
रूके ना हाथ अभी तक है दम में दम बाकी'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतेंदु जिन्होंने हमेशा नवीन विषय को अपनाया उनसे हिंदी ग़ज़ल भी समृद्ध और लाभान्वित हुई। यह अलग बात है कि हिंदी ग़ज़ल परंपरा में भारतेंदु का बस जिक्र भर आता है। उन पर समग्र मूल्यांकन नहीं किया जा सका। उनकी कविताओं में जहां राष्ट्रप्रेम, समाज सुधार एवं भक्ति भावना है वही प्रवृत्ति उनकी तीस से अधिक ग़ज़लों में भी है। उनपर यह आरोप भी ठीक नहीं है कि उनकी गजलें स्त्री- पुरुष प्रेम पर है। सच्चाई यह है कि भारतेन्दु ने अपनी ग़ज़लों में भी जनमानस में राष्ट्रीय भावना का बीजारोपण किया है। शायद यही वजह है कि उनके इस युग को सामाजिक चेतना का युग भी कह कर पुकारा जाता है।

□□□

संस्कृत

"पापा, आप दादाजी को क्यों नहीं समझाते ? जब कोई दोस्त मुझसे मिलने आता है, वो अपना पोथी-पतरा लेकर सोफे पर पालथी मारकर बैठ जाते हैं, उस पर से घुटने तक की धोती...उफ़्फ़ ! मेरा दोस्त क्या सोचेगा , इसका ज़रा भी वो ख्याल नहीं रखते ! " ऐसा कह कर राहुल अपने पैरों को सेंटर टेबल पर पसारते हुए सोफे में धँस गया |

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि पहले बेटे को प्रश्न का जबाब दूँ, या उसके चप्पल की तल्ली से दिख रहे गंदगी को सामने से हटाने का आदेश दूँ...!

इसी बीच दूसरे कमरे से ठक-ठक की आवाज आयी। हिलते परदे की बीच से टहलते हुए बाबूजी की नजर मुझसे टकराई, मैं साकांक्ष हो गया | तभी कॉलबेल की तेज आवाज 'ट्रींग..... 'से मेरे मन में चल रहे संवाद में अचानक से ब्रेक लग गया |मैंने दरवाजे से बाहर झाँककर देखा , एक व्यक्ति सामने खड़ा था |

"रमेश झा का घर यही है ?" उसने पूछा।

"हाँ..,मैं ही हूँ... |"

"आपके पिता शिवाधर झा हैं ?"उसने फिर से पूछा।

" जी,हाँ..| क्या बात है?"

" उनसे कहिए,संस्कृत-विश्वविद्यालय से एक सज्जन मिलने आये हैं |" सड़क पर खड़ी सफेद कार की तरफ हाथ का इशारा करते हुए उसने कहा |

मैं अन्दर जाकर बाबूजी को जानकारी दी | बाबूजी मेरे साथ छड़ी की मूठ पर पकड़ बनाये हुए बाहर आये| कार में बैठा हुआ सूटेड-बूटेड आदमी, हम दोनों को देखते ही बाहर निकल कर बाबूजी के चरण स्पर्श किए |

आगंतुक और बाबूजी के बीच सौहार्दता को राहुल सोफे पर बैठे-बैठे सब देख रहा था |उन दोनों के बीच वार्तालाप शुरू हो गई .... मैं बाबूजी के बगल में खड़ा सब सुन रहा था।

गुरूदेव , "आप तो बिल्कुल वैसे के वैसे ही हैं,वही खादी की धोती, लाल चंदन का टीका, दस सालों बाद भी कुछ नहीं बदला !"

"पहले यह बताओ,यहाँ कैसे आना हुआ ? अब तो तुम संस्कृत विश्वविद्यालय के रजिस्टार बन गये हो |" बाबूजी ने शिष्य को गले लगाते हुए कहा|

"गुरुदेव, सब आपका आशीर्वाद है | आप से एक विमर्श करने आया हूँ, हरिद्वार में एक महीने की संगोष्ठी होने वाली है और संस्कृत में संभाषण भी | आपकी सहमति मिले तो.. संगोष्ठी की अध्यक्षता के लिए आपका ही नाम भेज देता हूँ ? संस्कृत में वार्तालाप करने वाला आपसे बढ़िया दूसरा व्यक्ति मुझे कोई नजर नहीं आ रहा है ! संस्कृत में बोलने की बात तो दू..र लोग संस्कृत पढ़ना ही नहीं चाहते हैं!"

"हाँ, तुम सही कह रहे हो,आज की शिक्षा मात्र अच्छे पैकेज पाने के मंसूबे तक सिमट कर रह गयी है ! आजकल के युवकों को संस्कृत के प्रति न समर्पण है न ही श्रध्दा ! इसलिए तो हमारी संस्कृति का भी ह्रास हो रहा है।" राहुल पर नजर पड़ते ही बाबूजी की आवाज लड़खड़ाने लगी |

मैंने देखा, राहुल अभी तक सेंटर टेबल पर पैर पसारे ही बैठा था।

मिन्नी मिश्रा

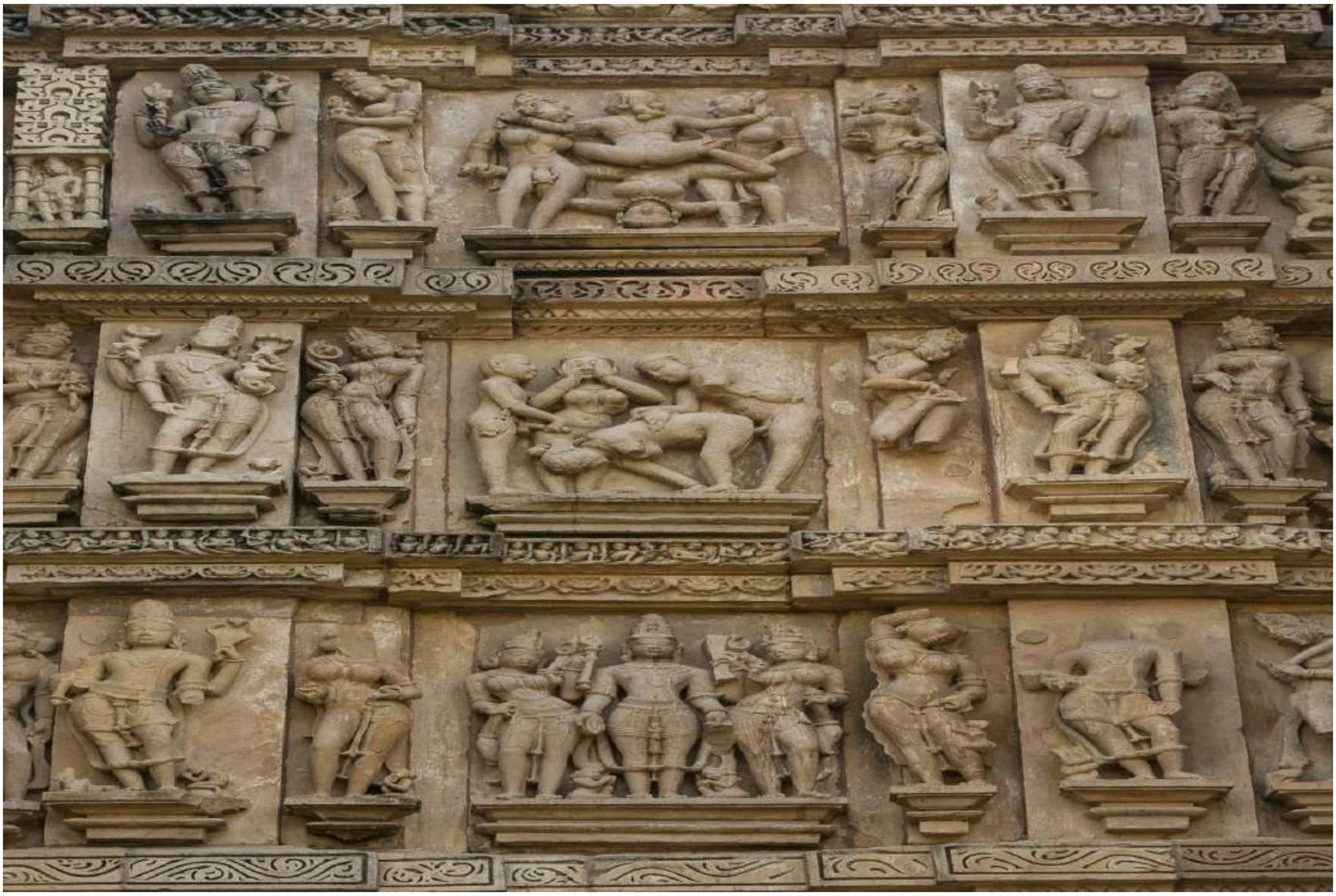

दो नैना मतवारे

(एक) **दीर्घकथा भाग-1**

प्रणय गाथा को जीवंत गान करती हुई, जीवन के आनंद का उच्चतम सत्कार करती हुई, काम कलाओं को साकार स्वरूप प्रदान करती हुई, मंदिरों के रोम-रोम से चिपकी प्रस्तर मूर्तियाँ, ऊपर तारक जड़ित खुला और अनन्त तक विस्तारित नभमंडल, सामने देश-विदेश से पधारे सुधि कला रसिक और मध्य में रचे गए मंच पर सत्यम-शिवम-सुंदरम स्वरूप को साकार करते साधनारत कलाकारों का अविस्मरणीय प्रस्तुतीकरण। यह एक ऐसा दृश्य बनता है जो चेतन मन को उस लोक की सैर कराता है जो कल्पनाजगत से परे है, व्यक्ति की समझ से परे है, किंतु उन्हें सहज प्राप्त है जिन पर शिव कृपा होती है।

ये दृश्य कल्पित नहीं, साकार और सत्य हैं। ये शिल्पग्राम खजुराहो के देखे उन दृश्यों की बात है, जो साकार स्वर्गलोक की परिकल्पना को धरती पर उतारते हैं। यह स्थान मध्यप्रदेश राज्य के छतरपुर जिले में बुंदेलखंड की सरजमीं पर खजुराहो नाम से ख्याति में है। शिल्प ग्राम (खजुराहो) की बोलती, गाती, हँसती हुई, प्रेमरत उन प्रस्तर मूर्तियों के जागरण की चर्चा प्रासंगिक है जो कभी शयन नहीं करती हैं, रात्रि में उनका स्वरूप विद्युत वल्लरियों की मौजूदगी में खास गोचर होता है जब वे चौसठ काम कलाओं को हर कोण से प्रकट करती हुई होती हैं। जिन्होंने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को केवल एकांतिक पलों के लिए माना है, सार्वजनिक तौर पर अश्लील कहा है, वे भी यह मानते हैं कि खजुराहो की प्रस्तर मूर्तियाँ समय के प्रत्येक छोर से श्लील हैं, जीवंत हैं, जीवन के उद्भव की दार्शनिक विवेचना करती हैं।

रामानुज अनुज

ऐसा ही दृश्य बनता है जब खजुराहो नृत्य महोत्सव होता है। नृत्य की गरिमा और शास्त्रीयता को समर्पित यह आनंद उत्सव प्रतिवर्ष आयोजित होता है। इस महोत्सव की

शुरुआत वर्ष 1975 में की गई थी और तब से आज तक मध्य प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग अंतर्गत उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत एवं कला अकादमी द्वारा इसका सफल आयोजन निरंतर किया जा रहा है।

भारत में कला का स्वरूप परंपरानिष्ठ संस्कार के समान है जो कठोर साधना से पल्लवित हो कलाकार के स्व की अभिव्यक्ति करने के साथ समकालीन सांस्कृतिक परिदृश्य का भी वर्णन करता है। हमारी संस्कृति में नृत्य मात्र एक नयनाभिराम प्रस्तुतीकरण न होकर कलाकार के गहन चिंतन को साकार करने वाला एक सार्थक प्रयास है। खजुराहो नृत्य समारोह को शुरू करने का उद्देश्य मात्र शास्त्रीय नृत्य का संरक्षण नहीं बल्कि उससे इतर शास्त्रीय नृत्य के माध्यम से वह तत्व भी सन्दर्भ में है, जो नृत्य के माध्यम से कला के परमोत्कर्ष की अनुभूति कला रसिकों को प्रदान करता है।

तब से लेकर आज तक यह नृत्य समारोह खजुराहो के सुप्रसिद्ध मंदिरों के प्रांगण में आयोजित होता आ रहा है। खजुराहो नृत्य समारोह में अब तक भारत की सभी प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैलियों जैसे भरतनाट्यम, ओडीसी, कथक, मोहिनीअट्टम, कुचिपुड़ी, कथकली, यक्षगान, मणिपुरी आदि के युवा और वरिष्ठ कलाकार अपनी कला की आभा बिखेर चुके हैं। किसी भी कला रसिक के लिए खजुराहो नृत्य समारोह एक ऐसी दृश्यावली है जिससे उसे अपने भीतर उठने वाले हर रचनात्मक ज्वार भाटा का उत्तर सहज ही मिल जाता है।

मोहिनी शिवहरे थोड़ी देर पहले स्टेज से शब्द, भाव, संगीत, लय-ताल से युक्त भरतनाट्यम की प्रस्तुति देकर तीन सितारा होटल के रूम में पहुँची थी। उनकी तबियत सुबह से नाशाद चल रही थी। ऊपर से बॉम्बे से खजुराहो तक की यात्रा फिर बिना विश्राम किए प्रस्तुति देना, तबियत को भारी बनाने के लिए इतना मसाला बहुत होता है। मोहिनी सिर्फ नाम की नहीं, कुदरत ने उन्हें मोहिनी रूप भी प्रदान किया था। चालीस की आयु को वे पंद्रह साल पीछे धकेलकर पच्चीस की

बनी हुई थी। चाँदनी में नहाई हुई-सी उज्जवल देह, यौवन की परत चढ़ी मांसल देह, तीखे नयननक्स, किसी योगी को भी योग पथ से डिगाते हुए कमानीदार नयन और वह आवाज जिसे सुनकर हवाओं से भी संगीत झरे। ऐसे सौंदर्य को विलोकने निमित्त देव समुदाय भी लोक छोड़कर धरती में घर बनाकर रहने लगें, तो अतिशयोक्ति नहीं। ऐसे रूप की स्वामिनी भरतनाट्यम की मशहूर नृत्यांगना मोहनी शिवहरे।

'तुम थकी हुई लग रही हो, लेट जाओ तो मेकप उतार कर मैं सूखी मालिस कर दूँ---!' परछाई की तरह मोहिनी के साथ रहने वाली शोभना नारायणन बोली।'

शोभना दक्षिण में स्थित तमिलनाडु प्रदेश के त्रिचरापल्ली जिले की रहने वाली है। मैडम के नृत्य को देखकर वह उनपर मोहित हो गई थी। नारी के स्वरूप पर नारी नहीं रीझती, इस कथन को झुठलाते हुए वह घर-द्वार रिश्तों को तिलांजलि देकर मोहनी के साथ छाया की तरह बनी रहती है। दोनो ने विवाह नहीं किया है। अभी शोभना की उम्र लगभग तीस की होगी, वह भी शारीरिक सौष्ठव और सुंदरता में किसी से कम नहीं थी। वह मोहिनी के नृत्य दौरान मृदंगम पर संगति करती है। किसी नारी का मृदंगम से लय-ताल की संगति देना भी दर्शकों के लिए कौतुक का विषय होता था। वह दृश्य दर्शकों में रोमांच भर देता है, जब वह मृदंगम बजाना छोड़कर खड़ी हो जाती है और, मुँह से बाँसुरी की ध्वनि निकालती है। ऐसे अद्भुत आत्मिक आनन्द को महसूस तो किया जा सकता है, वर्णन सम्भव नहीं है। यूँ लगता है, जमुना तीर में खड़े कान्हा वंशी बजा रहे हैं और गोपियाँ नृत्य कर रही है। इस अवधि में मोहिनी भी नृत्य-कला का उच्चतम प्रदर्शन करती है।

मोहिनी, उसके गाल में हल्की-सी चपत लगाकर बोली, 'कलाकार है हम, थकान कैसी?'
शोभना, 'कलाकार भी इंसान होते हैं, उनकी जरूरतें, अनुभूतियां, भूख-प्यास, शयन-जागरण कुछ अलग तो नहीं होते।'
मोहिनी, 'सच कहती हो, हमारी फीलिंग और जरूरतें आम इंसानों जैसी है, किन्तु दुनिया हमें अलग कोण से देखना पसंद करती है।'

मोहनी के कमजोर और स्वीकारवादी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए तल्ख आवाज में शोभना बोली, 'हम आम जीवन नहीं जीते हैं, सोते-जागते, उठते-बैठते साधनारत रहते हैं। किंतु समय के साथ दुनिया कला साधकों को भूल जाती है। सरकार भले पद्मश्री, पद्म विभूषण से अलंकृत कर दे। मैं मानती हूँ, यह कलाकार का अधूरा मान है। पूर्ण तो तब है, जब कलाप्रेमी बढ़ें, और उन नामों को याद रखें जो इतिहास के सफ़ों में दर्ज हो गए। आज कितने लोग हैं जो यामिनी कृष्णमूर्ति, लीला सैमसन, सोनल मानसिंह, सितारा देवी या ऐसे बहुत से कला साधकों के नाम जानते हैं? शायद बहुत कम। इसलिए मेरी राय है कि कलासाधक अपनी निजी रुचियों का ख्याल रखते हुए कला साधना करें।'
मोहिनी, 'तुम्हारी यही आदत मुझे पसंद नहीं है, छोटी बात को भी बहुत घुमाती हो, साफ बताओ, हमें क्या करना चाहिए?'
शोभना, 'विवाह।'
मोहिनी, 'ढूँढ़ो फिर, कोई मेरे योग्य वर, और अपने लिए भी।'
शोभना, 'ठीक है फिर मना न करना।'
मोहिनी, 'किंतु नृत्य से ही मेरे दिल की धड़कनें है, यह उसे समझा देना। नृत्य नहीं तो मोहिनी नहीं।'

'और मोहिनी नहीं तो शोभना नहीं।'
मोहिनी, चलो, हम तुम आपस में विवाह कर लें, यह हो भी रहा है। वैधानिक मान्यता के लिए न्यायालय के संज्ञान में बात लाई गई है।'
'हा हा हा हा'---शोभना हँस पड़ी थी। हँसी में मोहिनी ने भी साथ दिया।

'अच्छा, अभी एक काम कर, हल्के हाथ से सिर दबा दे।' मोहिनी बोली।
'दबा दूँगी, प्रथम भारी वस्त्रों को शरीर से पृथक कर दूँ।'

'ठीक है।'

अब वह सिर्फ अंतरंग वस्त्रों में थी, शोभना सिर में हथेली से दबाव देती हुई बोली, 'आज तुमने गजब कर दिया, आँखों से वह सारी बातें कह दी जो मुँह से कदापि नहीं कही जा सकती।'

'कोई खास कोशिश तो नहीं की।'
'तुम कुछ पलों के लिए स्टेज से अदृश्य भी होती रही हो।'

'ऐसा तो सम्भव नहीं?'

'जब तीव्र लय में फिरिहिरी ले रही थी, तब का दृश्य है। सच कहूँ ऐसा लगा कि कोई लट्टू मानव आकार में घूम रहा है।'
'मुझे याद नहीं, मैं तो नृत्य के समय माता भवानी की तरफ से कैलाश पर्वत में साधनारत, ध्यानमग्न महायोगी, भूतनाथ, महाकाल भगवान शिव को पुकारती हूँ कि देखो---नयन खोलो, तुम्हारी हिय-निवाशिनी पार्वती तुमसे प्रणय निवेदन करने आई हुई है, उसका रोम-रोम कामाग्नि से जला जा रहा है। त्राहि माम् देव, शरणागत दासी के जीवन की रक्षा कीजिए।'
'आश्चर्य, आश्चर्य!!' शोभना के मुँह से अनायास निकल गया।

'बस, हो गया, पीड़ा चली गई, घुँघरू और उतार दे।'

शोभना का ध्यान अचानक से पैरों की तरफ गया। घुँघरू की वजह से जगह-जगह पाँव की उपरि त्वचा छिलकर रक्ताभ हो गई थी, जैसे रक्त निकलने वाला हो। उसके मुँह से चीख निकल गई, 'अइअइयो, ये क्या हुआ?'
'अरे कुछ नहीं, चिल्लाती क्यों हो?'
'स्किन कट गया है।'

'नई बात थोड़ी है, होता रहता है, घुँघरू उतार कर कोई क्रीम लगा दे।'

मोहिनी के दोनो पैर के ऊपर में खरोंच के निशान थे। घुँघरू उतार कर शोभना क्रीम लगाने लगी। तभी होटल के रिसेप्शन से मैनेजर का फोन आया। उसने बताया, 'एक युवक, जो खुद को नायब तहसीलदार बताते हैं, मेरे समझाने के बावजूद भी आपसे मिलने की जिद किए हैं।'

'आप उनसे कहिए, मॉर्निंग में आएं।'
'नहीं मान रहे हैं, मैंने कहा है कि कल सुबह आएं। परन्तु वे जिद कर रहे हैं। अब मैम, आप ही बताइए, उन पर प्रेसर तो नहीं डाल सकते, अधिकारी हैं, पता नहीं कब उनसे काम

निकल आए।'
'ठीक है, भेज दीजिए।'

मोहिनी के निर्णय पर शोभना गुस्सा होकर सुनाने लगी, 'तुम भी गजब करती हो, कपड़े उतार कर बैठी हो, क्या उससे ऐसे ही मिलोगी?'
'दुपट्टा डाल दे।'
'नहीं डालती, ऐसी बैठी रहो या ये भी उतार कर मन्दिर की भित्ति से मूर्तियों के साथ में चिपक जाओ। अरे! थोड़ा भी सेहत का ख्याल नहीं रखती हो, हम बॉम्बे से प्रोग्राम देकर सीधे यहाँ स्टेज शो किए हैं। पैरों में चोट भी है, तब भी आराम नहीं।'

'कितनी प्यारी बातें करती हो, नाराजगी में तो और--- आने दे उसे, कोई दिल का मरीज होगा।'
दुपट्टा ओढ़ाकर वह गाल फुलाए हुए पलंग में जा बैठी। आगंतुक युवक लगभग चौबीस-पच्चीस साल का था। गोरा बदन, सुदर्शन कदकाठी, चौड़ा मस्तक, बोलती हुई आँखें, मुस्कुराते हुए होंठ द्वय, आगंतुक युवक को आकर्षक बनाते थे। स्वभाव से वह शिष्ट लगा, आते ही हाथ जोड़कर, अदा के साथ गर्दन झुकाकर मोहिनी और शोभना का अभिवादन किया।

'तशरीफ़ रखिए हुज़ूर।' व्यंग्यात्मक लहजे में शोभना बोली।

'मैम! आप मुझे लज्जित मत कीजिए, मैं हुजूर कुल का नहीं हूँ।' वह सोफे पर बैठते हुए बोला।'
'तो?'
मोहिनी ने उसे चुप रहने का इशारा किया। शोभना मुँह बनाती हुई बालकनी तरफ चली गई और बाहर की जगमगाहट में खो गई। यह तीन सितारा होटल तालाब के पास था। यहाँ से तालाब का रोशनी से सराबोर हिलता-डुलता हुआ जल साफ दिखाया पड़ रहा था। कस्बे की दृश्यावली चित्ताकर्षक थी।
'हाँ तो अपना परिचय दीजिए, और आने का उद्देश्य कहिए।'

'मैम, मेरा नाम अमरकांत है, मैं मूलरूप से पटना का हूँ। दिल्ली से एमबीए किया हूँ, बेरोजगारी का दौर मुझे खजुराहो ले आया है। मैं यहाँ रहकर गाइड का काम करता हूँ।'
'तुम तहसीलदार नहीं हो, फिर क्यों मैनेजर से झूठ कहलवाया?'
'मैम, मैं व्यवसाय की लालच में आपसे मिलने नहीं आया हूँ, मैं तो आपके डांस से प्रभावित होकर आप तक खिंचा चला आया। मैं दो साल से नृत्योत्सव देख रहा हूँ, देश की जानी-मानी हस्तियों के नृत्य देख चुका हूँ, किंतु आप जैसा नृत्य कभी नहीं देखा। यदि मैं मैनेजर से सत्य बताया होता तो वह मिलने की अनुमति न देता।'
'अच्छा, नृत्य कैसे लगा?' शोभना बालकनी से लौटकर युवक के बगल में सोफे पर बैठते हुए बोली।
'मैं कैसे बताऊँ? वर्णन करने की योग्यता मुझमें नहीं है।'
'फिर भी।'
'ऐसा लग रहा था जैसे मन्दिर की मूर्तियाँ उठकर स्टेज पर एक साथ नृत्य करने लगी हों।'
'वे तो नग्न मूर्तियाँ हैं, बेलिबास हैं, क्या वे वस्त्रादिक अलंकरण के साथ नृत्यरत थीं?'
'मेरा ध्यान सिर्फ नृत्य में केंद्रित था, अधिक बताना मेरे वश में नहीं है।'
शोभना और अमरकांत की बातें सुनकर मोहिनी के कोमल ओंठो पर हल्की मुस्कुराहट तैर गई, जैसे कोई फूल आहिस्ता से खिला हो। शोभना का मुँह बंद रखना संभव नहीं था, वह बोली, 'आपने मैम की ऐसी तारीफ कर दी है कि मन्दिर की मूर्तियाँ भी प्रसन्न हो गईं होंगी।'
'जी।'
अमरकांत, अब संकोच छोड़कर बोलने लगा था, 'मैम समय हो तो खजुराहो को नजदीक से देख लीजिए, दूर-दराज, देश-विदेश से पर्यटक, शिक्षाविद, इतिहास, दर्शन में रुचि रखने वाले यहाँ आते हैं।'
शोभना, 'और उन्हीं की कृपादृष्टि से खजुराहो में बहुत से लोगों को रोजगार मिला हुआ है। सुनी हूँ, सैलानियों को यहाँ के लोग बहुत ठगते हैं?'
अमरकांत, सत्य है, किंतु सभी ऐसे नहीं हूँ।'
मौन तोड़ती हुई मोहिनी बोली, 'मैं सुनी हूँ कि विदेशी टूरिस्ट को स्थानीय गाइड मंदिरों में ले जाकर सौंदर्य, काम, और दर्शन की अपनी बुद्धि लगाकर व्याख्या करते हैं, जो असत्य होती है। यहाँ के गाइड बहुत होशियार हैं, भारतीय भाषाओं के साथ विदेशी भाषाओं की जानकारी भी रखते हैं।'
अमरकांत, 'मैम, यह सच है, ऐसे गाइडों का उद्देश्य टूरिस्ट को वाक्य-चातुर्य से प्रभावित कर अधिक से अधिक पैसा ऐंठना होता है। युवा गाइड सिर्फ यही नहीं करते, विदेशी महिलाओं की सेक्स पूर्ति, मसाज, के साधन भी बनते हैं। जबकि इन मूर्तियों में, जीवन के यथार्थ और प्राचीन भारतीय दर्शन का समावेश है। सबसे महत्वपूर्ण और रोचक बात कि इन नग्न कामक्रीड़ा को दर्शाती मूर्तियों को देखने के बाद भी किसी के मन में यह तनिक भी विचार नहीं आता है कि यह देखने योग्य दृश्य नहीं हैं।
बल्कि आप इन मूर्तियों को देखने के बाद जीवन की वास्तविकता, सच्चाई और आध्यात्मिक पथ को अपने भीतर महसूस करने लगते हैं। इन मूर्तियों पर वही नक्काशी की गई है जो पति-पत्नी (स्त्री-पुरुष) के बीच संपर्क में आने के बाद नया रिश्ता बनता है। यह दुनिया की सच्चाई है और इस कटु सच से पलायन नहीं किया जा सकता है।'
शोभना, 'देखने के बाद ही फीलिंग बताई जा सकती है, यह सबकी अलग-अलग भी हो सकती है। हम नृत्यांगनाएं भी प्रस्तुति समय में एक मूर्ति जैसी हो जाती हैं, फर्क इतना होता हैं, हम जीवित होते हैं; दर्शक हममें क्या देखते हैं, यह वही जाने? वैसे मोहिनी मैम के नृत्य से आपको कैसी फीलिंग आई?'
अमरकांत, 'जी मैम! मुझे लगा कि समूची कायनात एक गोल घेरे में कैद होकर गोल-गोल तेजी से चक्कर काट रही है।'
शोभना, 'अद्भुत---अद्भुत।'
अभी वह जाने के मूड में नहीं था, किंतु मोहिनी को थकान महसूस हो रही थी। वह उसे टालने के उद्देश्य से बोली, 'ठीक है, आप अपना विजिटिंग कार्ड देते जाओ, जैसा प्रोग्राम बनेगा, मैं सुबह बता दूँगी।'
'ओके मैम।'

(क्रमशः .....)

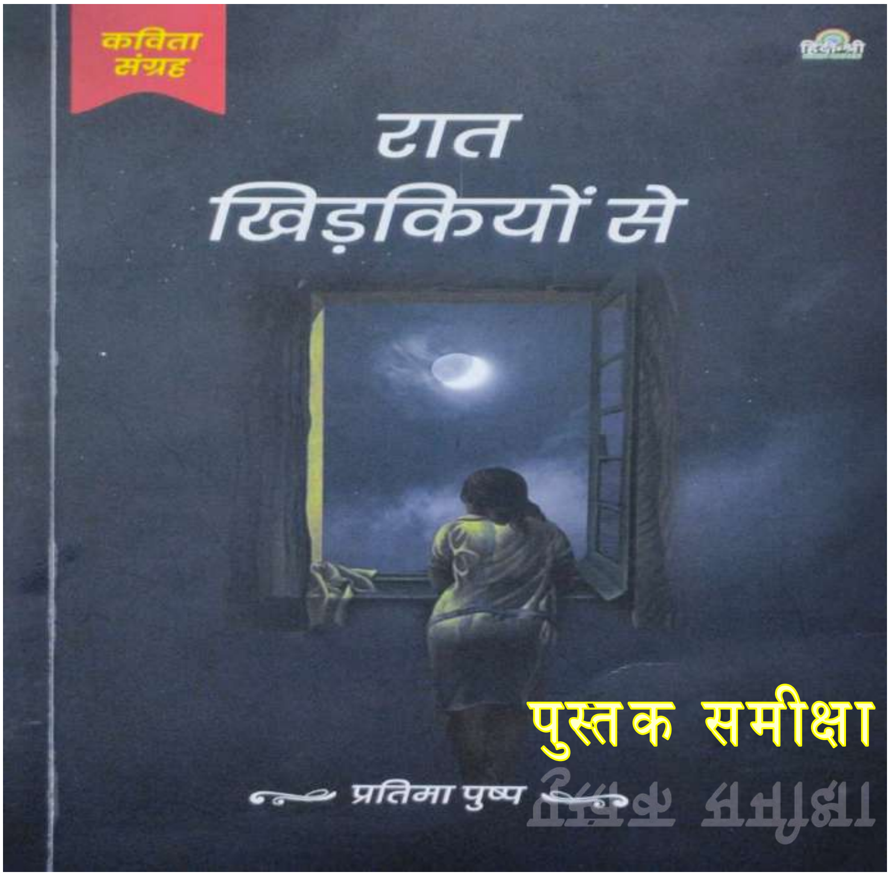

गौरव बोध से ग्रसित संस्थाओं के पास इस बात का कोई समुचित उत्तर नहीं है कि व्यक्ति के चरित्र निर्माण के लिए उन्होंने क्या किया या आगे उनकी क्या योजनाएं हैं।

ऐसे कठिन समय में जब साहित्य आचरण का विषय न हो कर अर्थहीन मान लिया गया हो तब रचनाकार का दायित्व और बढ़ जाता है कि वह अपने को सामयिक और लोकप्रिय बना कर नई दिशा दे। साहित्य लेखन की दो दिशा रही है। एक लोक साहित्य और दूसरा बौद्धिक साहित्य।लोक साहित्य दो भागों में बंटा दिखाई देता है।एक तो वह जो केवल मजा लेने-देने के लिए लिखा या पढ़ा जाता है जबकि दूसरा अपने को लोक से जोड़ते हुए लोकचेतना को रचनात्मक दिशा देने का कार्य करता है।और बौद्धिक साहित्य जिसे अक्षर साहित्य कहा जाता है वह ज्ञान, विचार और भाषाई पुष्टता के साथ कलात्मक सौंदर्य व संवेदना को शामिल करते हुए अपने समय या एक विशेष काल खंड को निरूपित करता है।अब यह बात अलग है कि अनेक

रात खिड़कियों से (काव्य संग्रह)

समीक्षा के लिए पुस्तक अनिवार्यतः भेजें : संपर्क भाषा भारती, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली-110092

रचनाकारों ने लोक साहित्य को बौद्धिक साहित्य की श्रेणी में पहुंचा दिया है जबकि बौद्धिक साहित्य लोक जीवन में अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

प्रतिमा पुष्प महिला रचनाकार हैं तो जाहिर है कि उन पर पड़ने वाला चतुष्कोणीय यथार्थ परक दबाव उनकी कविताओं में अलग-अलग रूप लेकर आकार ले। रचनाकार के पास स्वयं की देखी या भोगी अनुभूति होती है, परंतु किसी काल खंड या क्षेत्र विशेष के लिए वही प्रवित्ति सामाजिक चरित्र बन जाती है। ऐसे में यदि रचनाकार अपने भोगे यथार्थ का चित्रण करता है तो वह भी व्यक्तिगत न हो कर समूह का आख्यान हो जाता है।

प्रतिमा पुष्प की इस संग्रह की कविताओं में चिंतन के साथ सांस्कृतिक चेतना व करुणा के गहरे क्षण हैं। उनके यहां गांव के साथ

रात खिड़कियों से (काव्य संग्रह)

कविताओं में चिंतन और गहरी संवेदना के क्षण

प्रतिमा शर्मा "पुष्प" की कविता संग्रह 'रात खिड़कियों से' को पढ़ते हुए कविता लेखन की एक लंबी परंपरा यात्रा उसके पडा़व व बदलाव के क्षणों की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। अब 21 वीं सदी है, ऐसे में अपने परिवेश का निरीक्षण एवं समसामयिक विचार, संवेदना और तद्नुसार भाषिक विन्यास का आज की कविता पर पड़ने वाला प्रभाव खास मायने रखता है। आज के नए पन को लेकर ही हम कल से अपने को अलग कर सकते हैं या कुछ नया दे सकते हैं।हम अपने हिन्दी भाषी क्षेत्रों का निरीक्षण करें तो पारिवारिक जीवन में बहुत बदलाव आ चुका है। संयुक्त परिवार का या तो नामोनिशान मिट चुका है या वह खींचतान में फंसा छटपटा रहा है। आदमी की सोच, प्रवृत्ति, व्यवहार के साथ जीवन के मानक बदल गए हैं। महिलाओं, बुजुर्गों, मजदूरों के साथ बीमारों और आर्थिक रूप से विपन्न लोगों की हालत चिंताजनक है। बाजार की चकाचौंध भाग दौड़ और विज्ञापनों ने नई पीढ़ी को अजीबो-गरीब मुश्किल में डाल रखा है। सरकारी दफ्तरों से लेकर राजनैतिक सत्ता के गलियारे तक तेरा-मेरा मचा हुआ है। शिक्षा,चिकित्सा और व्यवसाय की गति सुकून देने वाली नहीं है। अपनी ओर से

मीठी स्मृतियां, रिश्ते व सावन और बसंत भी है। उनके यहां प्रेम की मनुहार और आक्रोश दोनों हैं।वह आज के बदलाव को कुछ इस तरह देखती हैं।-- ओ मेरे मिट्टी के ढहते हुए घर/ मिट्टी से मिट्टी में मिलकर एकाकार हो/ विलय होने से पहले/ढहते हुए तुम्हारी विकल दृष्टि/हृदय का व्याकुल आर्तनाद/ तुमने निश्चय ही पुकारा होगा/... क्योंकि तुम्हारे साथ ही नष्ट हो गई है/ पुरातन संस्कृति और परंपरा/दौड़ने लगी है आधुनिकता की अंधी आंधी/ जिसमें तुम्हारे रजकणों के साथ ही/ उड़ चले हैं पूर्वजों के नाम और आशाएं।

वह आदमी की जंगल से शहर तक की जीवन यात्रा पर टिप्पणी करती हुई 'जंगलों पर लिखा जाए' कविता में कहती है कि.....जब जंगल हो उठी हो जिंदगी/ तो कुछ जंगल पर लिखा जाए/उखाड़ फेंके गए मील के पत्थर/भटकते हुए सिर्फ अवसादों के घर/टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर नागों का बसेरा/किधर शाम होती है किधर सबेरा...।

अपनी ही कविताओं से विमर्श करती हुई वह 'क्यूं रूठी हो कविता' में कहती हैं.... क्यूं रूठी हो कविता'हमसे/ तेरे भावों को हम तरसे...। उनकी 'जन्म लेती हुई कविता' कविता यात्रा को परिभाषित करती हुई बताती है... यूं जन्म नहीं लेती कविता/ मंथन कर शुभ-अशुभ/ हृदय की गहराई तक हिलोर कर/मक्खन सी बिलोती हैं/भावों को पिरोती हैं अश्रुओं में/ तब कहीं जन्म लेती है कविता..। वह ' कविताएं चूल्हे पर' कविता में लिखती हैं... कविताएं लिखी जानी चाहिए चूल्हे पर/ जिस पर पकते हैं पकवान।इसी प्रकार 'कराहती हैं कविताएं' में उनका सवाल हुआ है कि... क्या हुआ कविता यदि कराहती है/देश काल की पीड़ाएं आत्मसात करती है..।

आज के आदमी और उसके अस्थिर चरित्र को प्रश्न बना कर 'पिघलते लोग' कविता में तंज करती हैं... गीली मिट्टी जैसे नरम/गलते पिघलते लोग/आकृतियां बदलते लोग/ गिजगिजाते गंधाते लोग/इनकी तबीयत का रंग/मीठे नमक का समिश्रण है/स्वादिष्ट किंतु क्षरणयुक्त/चाशनी में लिपटा जहर है/ये चाट जाते हैं जीवन शक्ति/सामंतवादिता की जंजीर थामें/नए शिकार की निरंतर तलाश/ दलदल बन कर पसर जाते हैं/गीली मिट्टी से नरम लोग।

उनकी कविताओं में स्त्री विमर्श के प्रभावी क्षण देखने को मिलते हैं। वह "बोलो-बोलो" कविता में सवाल करती हैं...कौन हूं मैं तुम्हारी/ माँ, बेटी, सखी/ पत्नी, प्रेमिका या सिर्फ सेविका/या फिर कोई देवी/जिसे पूजते हो तुम/यदा कदा सिद्ध होने तक/विसर्जन की परंपरा/निभाते हो तुम निरंतर/मुझे तो लगता है कि/स्त्री तुम्हारे लिए/तृप्ति नहीं प्यास है/या फिर टाइमपास है..।

"गुलाब और रोटी".. कविता में वह कहती हैं...काश रोटी का कोई खेण होता/पीठ पर रोटी लदा गट्ठर होता/क्या कभी कोई रोता हुआ झट से मुस्कुराएगा/ऐसा कोई प्रेम दिवस या वेलेंटाइन आएगा..।

प्रतिमा पुष्प जी की प्रेम कविताओं का जिक्र किए बिना संग्रह पर बात करना अधूरा लगता है। संग्रह में प्रेम कविताएं कई भाव भूमि के साथ उभरती हैं और विस्तार करती हैं। उनकी "तुम मिले तो" कविता में वह लिखती हैं.. तुम मिले तो लगा/सचमुच तुम थे/ मेरे बचपन के सपनों में..। वह " मिस यू " कविता में कहती हैं...मिस यू बहुत ज्यादा/ करना चाहिए या नहीं/फिर भी तुमको अपना मानता है/ये पागल टूटा हुआ दिल। अपनी "अ न जा ना" कविता में वह कहती हैं...लिख दूंगी प्रेमी का नाम) दरवाजे पर अपने अनजाना/नजरें फिराना, चेहरा घुमाना/ और फिर मुकर जाना/लिख देना फिर बस/ मुस्कान छुपाते हुए/अनजाना के बाद/ आ न जा ना।

संग्रह शीर्षक " रात खिड़कियों से" में वह पूछती हैं कि.. कौन कहता है/रात होती है भयावह/स्याह कारी निपट अंधेरी/ रात योगिनी शांत निस्पृह/तप रत तरंगित /साँस लेती शनैः शनैः/ ...रात होती है/चमकती चांदनी सी/धवल धुंधली शुभ्रवस्त्रा रागिनी सी।

प्रतिमा पुष्प की कविताओं का तथ्य, शिल्प और भाषा प्रवाह वैचारिक गति देने में सहायक है। उनकी कविताएं अपने परिवेश और समय को लेकर एक असंतोष भरी छटपटाहट से गुजरती है और सभी के हित के लिए संपूर्ण सकारात्मक परिवर्तन की मांग करती है जो साहित्य का उद्देश्य है साथ ही आज की नई समकालीन कविता का आधार है। उनकी यात्रा निगेटिविटी में पाजिटिविटी की तलाश है। कविता की इस यात्रा के लिए प्रतिमा पुष्प जी को साधुवाद व बधाई कि उनको अपनी अक्षर साहित्य की कविता में उत्तरोत्तर ऊंचाई एवं लोक स्वीकृति मिले।

भोलानाथ कुशवाहा

(वरिष्ठ साहित्यकार) बांके लाल टंडन की गली, वासली गंज, मिर्जापुर पिन कोड- 231001 मो.- 9335466414/9453764968

□□□

समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकें :

(1) रात खिड़कियों से (काव्य संग्रह) **प्रतिमा शर्मा "पुष्प"**

(2) लघुकथाओं का खजाना (लघुकथा संग्रह) **डॉ योगेंद्र नाथ शुक्ल**

(3) सलीबें (काव्य संग्रह) **डॉ रंजना गुप्ता**

□□□

समीक्षा के लिए पुस्तक अनिवार्यतः भेजें :

संपर्क भाषा भारती, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली-110092

पुस्तक समीक्षा : लघुकथाओं का खजाना-डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल

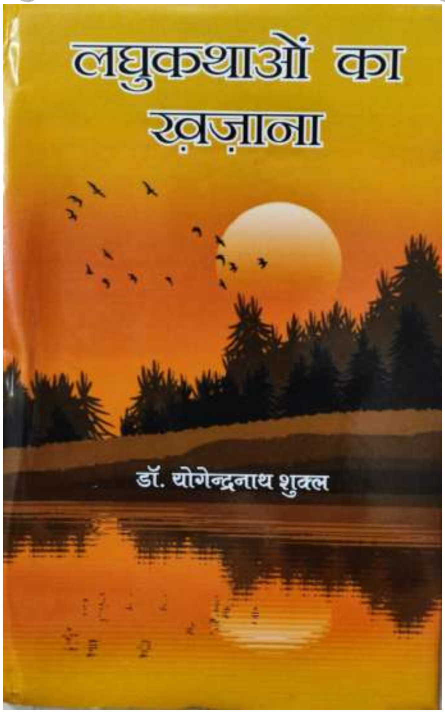

समीक्षक सिद्धेश्वर

लघुकथा के रचना विधान और इसके तकनीक पर अविरत बहस जारी है। इधर सोशल मीडिया पर लघुकथाओं की तादाद बढ़ती ही जा रही है। वह भले ही "लघु" हों और उनमें "कथा" भी हो, तो भी उन्हें लघुकथा नहीं माना जा सकता ।इसका कारण यह है कि इसकी अपनी एक अलग सृजन प्रक्रिया है ।लघुकथा यदि अपने में व्यक्त यथार्थ का चुभन पाठक को नहीं करा पाती ,तो वह श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती।

"लघुकथा का खजाना" को पढ़ते समय यह सहज ही अनुमान लग जाता है कि डॉ योगेंद्रनाथ शुक्ल लघुकथा के प्रति कितने सजग और गंभीर हैं। हमारे जीवन में घटने वाली छोटी-छोटी बातों को भी यदि गंभीरता से पकड़ा जाए तो लघुकथा में जान आ जाती है। कृति की लघुकथाएं इसका प्रमाण हैं। "सफेद गुलाब" छह:,सात पंक्ति की लघुकथा होने के बावजूद, समाज के बदलते सोच को बखूबी दर्शा देती है। पाश्चात्य संस्कृति हमारे देश में अपना अधिकार कितना जमा चुकी है। प्रेम के रिश्तो को कोई भी आजीवन चलाना नहीं चाहता। यह "सफेद गुलाब" इसी का प्रतीक है। एक बड़ा सा बोर्ड लगाकर दुकानदार ने अलग-अलग रंगों के गुलाब के लिए भिन्न-भिन्न स्लोगन दिए थे।प्रेम की गहराई बताने वाले लाल गुलाब। प्रेम में अपनापन जताने के लिए गुलाबी गुलाब। प्रेम पर गर्व करने वाले नारंगी गुलाब तो दुकान में खूब बिके परंतु सफेद गुलाब(जिसे दुकानदार ने प्रेम के रिश्ते को आजीवन चलाने वाला, स्लोगन दिया था) नहीं बिका। आज का युवा पश्चिमी देशों की भांति मांसल प्रेम को ही प्रमुख मान बैठा है। यह एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में हमारे समक्ष आ गया है, जिसे हम आज सड़कों और बगीचों में खुलेआम देख रहे हैं।

लेखक में शिल्पगत प्रतिभा है ,इसीलिए तो इतनी गहरी बात को उसने सफेद फूल के माध्यम से बता कर वह हमें चेतावनी दे रहा है कि यदि इसी तरह सब कुछ चलता रहा, तो हमारी संस्कृति खंडो-खंडो में बिखरती चली जाएगी और हम विश्व में बनी पहचान को खो देंगे। ऐसी अनेक लघुकथाएं हैं, जो भले ही आकार में छोटी हैं, परंतु गहराई लिए हुए हैं।

कोरोना काल में लिखी गई एक लघुकथा "भूख" है जो जबरदस्त मारक क्षमता रखती है। पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव प्रभाव छोड़ती है। पूरे कोरोना कॉल अपने में समेटे, उस समय की विभीषिका को दर्शाने वाली यह लघुकथा यह बताती है की भूख में व्यक्ति की मनोदशा कैसी हो जाती है, कि वह मरे जानवर का मांस खाने के लिए भी विवश हो जाता है। आदमी की पैरों के पंजों से खून निकल रहा था, वह चार सौ किलोमीटर पैदल चलकर अपने गांव जा रहा था। शहर का निरीक्षण करने के लिए निकले जिलाधीश महोदय जब उस आदमी को मरे जानवर का मांस खाते हुए देखते हैं, तो उनका शरीर सिहर उठता है। उसकी मदद करते हैं, उसे गांव भेजने की व्यवस्था करते हैं ,उसे खाना देते हैं वह चला जाता है परंतु उस आदमी का चेहरा, उसके आंसू ,उसके पैरों से निकलता हुआ खून उनके दिमाग से नहीं हट पाते। इस एक लघुकथा से सारे कोरोना काल को भलीभांति समझा जा सकता है। वह त्रासदी दायक समय इस लघुकथा में सिमट आया है।

देश के सैनिक जब युद्ध में शहीद होते हैं, तो आम जन मानस भी उसकी पीड़ा को भोगता है। "जयकारे" लघुकथा यही तो व्यक्त करती है। जो लेखक इन दिनों बड़ी लघुकथा लिखने पर बल दे रहे हैं, उन्हें इस कृति की आरंभिक "जयकारे"," महापुरुष", "जान" "बोली", "मैंन्यू बोर्ड" और "शीर्षक" लघुकथाओं को अवश्य पढ़ना चाहिए। आज देखा जा रहा है कि छोटी और बड़ी लघुकथाओं का विवाद तथाकथित लेखक अनावश्यक रूप से खुद को चर्चा में लाने के लिए कर रहे हैं, जबकि यह लेखक के कौशल पर निर्भर करता है कि वह कम शब्दों में भी श्रेष्ठ प्रभाव उत्पन्न कर सकता है।

डॉ योगेंद्रनाथ शुक्ल जी की यह खासियत है कि वह सिर्फ एक लीक को पकड़कर नहीं चलते, बल्कि विविध विषयों का चुनाव कर बहुत ही आसानी से ऐसी जीवंत लघुकथा का सर्जन कर देते हैं, जिसे पाठक आसानी से भुला नहीं पाता। "उस्ताद", "कन्फेशन", "चूल्हे में गया धर्म" ,"कैमरा" ,"युद्ध" ,"मैंन्यू बोर्ड", जामुन का पेड़ आदि ऐसी अनेक लघुकथाएं हैं, जिनके बारे में यदि अलग-अलग व्याख्या की जाए तो बड़ा सा ग्रंथ निकल सकता है। समाज के बरअक्स समाज की उथल-पुथल को डॉक्टर शुक्ल ने अपनी कथाओं में उभारा है।उनकी लघुकथाओं में विचार, कथ्य और भाषा का सटीक अनुपात दृष्टिगोचर होता है, जो उन्हें श्रेष्ठता प्रदान करता है।लेखक की लघुकथाएं कभी पाठकों की कोमल संवेदनाओं को सहलाती हैं ("मातृछाया ", "श्रवण कुमार", "चाहत", "जज्बा" ,"सिरफिरा") कभी वे हमारे भीतर खामोशी से दस्तक देती हैं, तो कभी वे व्यंग्य बाण से समाज के किसी विशिष्ट वर्ग को

आहत करती हैं ("बोली", "शीर्षक", "इंडिया", "प्रजातंत्र", "मेंन्यू बोर्ड", "दिवसों का दर्द", "कैमरा", "भड़ास", "दारू") कभी यह पाठकों को संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं ("उस्ताद", "मार्गदर्शक", "सपने", "शिकारी", "जिंदादिली"), कुछ लघुकथाएं हमें उस दिशा में सोचने पर मजबूर कर देती हैं ("अपनी अपनी नियति", "चॉकलेट-डे" ,"सफेद गुलाब", "टूटता भ्रम", "ओफ", "जीत-हार") कुछ हमें हमारे देश की मिट्टी से जोड़ने का प्रयास करती हैं ("मजाक", "बदलते नायक", "किताब", "मूर्ति", "बेसहारा", "गिरगिट"," खून सनी दीवारें", "जामुन का पेड़", "भारतीय, "सवाल", "बेनूर भारत माता") कुछ लघुकथाएं पर्यावरण पर आधारित हैं ("बांझ", "पानी" , "कौवे", "अत्याचार", "तब्दीली", "खुदगर्ज", "गाय") युद्ध की विभीषिका संदर्भित भी कुछ प्रभावी लघुकथाएं हैं ("युद्ध", "परिंदे", "शहीद स्मारक", "हिंदुस्तानी", "पृथ्वी का कलंक") लेखक का किताबों के प्रति जो स्नेह है ,वह भी कुछ लघुकथाओं में दिखाई देता है ("किताब" , "शो-पीस", "दुर्दिन ","एक नया सुकरात") भूख की विभीषिका को दर्शाने वाली लघुकथाएं भी इस संग्रह में शामिल हैं ("भूख", "तकदीर", "रोटी")। डॉक्टर शुक्ल की लघु कथाएं कसी और मझी हुई हैं। ऐसा लगता है कि समाज का शायद ही कोई ऐसा कोना होगा जिसमें लेखक की दृष्टि नहीं गई हो। इस कृति की भूमिका में लेखक ने लघुकथा से संदर्भित जिन बिंदुओं को उठाया है, वह लघुकथा विधा और इसके लेखकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। हो सकता है कि लघुकथा के तथाकथित मठाधीशो को वह रुचिपूर्ण न लगे, पर उनकी बातें बहुत बेबाक हैं और उपयोगी भी। अपने प्रासंगिक वक्तव्य में डॉक्टर शुक्ल ने कहा है कि लघुकथा भले ही कहानी का छोटा रूप है ,किंतु इसका छोटा फलक अपने अंदर कहानी जैसा ही बड़ा फलक छुपाए रखता है।

डॉ शुक्ल जी का विचार है कि लघुकथा में घटना का वह रूप उभर कर सामने आता है, जैसा कहानी या उपन्यास में नहीं उभर पाता। वे लिखते हैं कि लघुकथा में लगा "लघु" विशेषण अपने आप में विलक्षण है, क्योंकि यही लघुकथा को ऊंचाई प्रदान करता है, इसी लघुता में ही प्रभुता छिपी होती है। उन्होंने उदाहरण भी दिए हैं कि जिस तरह मंत्र कितना भी छोटा होता है लेकिन उसका प्रभाव विस्तृत होता है। सूक्ति अत्यंत लघु होती है किंतु वह बहुत विशाल रूप लिए होती है। लेखक कहता है कि लघुकथा, दोहे अथवा उर्दू के शेर की पंक्तियां मुर्दों में जान फूंक देती हैं, जो कई बार बड़े-बड़े महाकाव्य, खंडकाव्य, उपन्यास या कहानी नहीं कर पाते।

अपने प्रासंगिक वक्तव्य के आलेख में डॉ शुक्ल ने लघुकथा संदर्भित जिन सवालों को उठाया है वह लघु कथा की समृद्धि और विकास के लिए जरूरी भी जान पड़ते हैं। उनके कुछ सवाल,जैसे क्या आज का लघुकथाकार सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व के प्रति सजग है? क्या वह जनजीवन को जागृत करने वाली लघुकथाओं को लिख रहा है? क्या लेखक राष्ट्र निर्माण का लक्ष्य लेकर अपने लघु कथा लिख रहा है? अथवा वह पुरस्कारों या तथाकथित लेखकों को खुश करने के लिए तो नहीं लिख रहा? कहीं लघुकथाकार अति बौद्धिकता का सहारा लेकर आधुनिक कविता की तरह जनमानस से लघुकथा को दूर तो नहीं कर रहा? क्या उसकी लघुकथा में शोध, बोध और क्रोध का उचित मेल हुआ है? ऐसे अनेक सवाल डॉ शुक्ल ने अपने आलेख में उठाए हैं।

सरल शब्दों और सहज शिल्प में गहराई वाली उनकी लघुकथाएं है। वे साहित्य और समाज की दूरी पाटने ,संवेदनशील समाज की स्थापना के लिए वह लेखकों से ऐसी ही लघुकथाएं चाहते हैं। निसंदेह उनका यह आलेख लघुकथा के संदर्भ में सोच के अनेक दरवाजे खोलता है। मुख्य पृष्ठ का कलेवर भी अच्छा बन पड़ा है। हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेजी के ख्यात लेखक जोगिंदर पाल की यह टिप्पणी दृष्टव्य है-"डॉक्टर योगेंद्र नाथ शुक्ल की लघुकथाएं जन जीवन से जुड़ी है, जिनमें हमारे समाज की सच्ची तस्वीरें खींची गई है। साधारण घटना को भी वह ऐसे ताने बाने से बुनते हैं कि वह आकर्षक बन जाती है ।वह एक दृष्टि में पढ़े जाने वाली नहीं, बल्कि रुक-रुक कर समझने और रसास्वादन लेने वाली है। उनका सहज शिल्प, गहरा चिंतन उनकी लघुकथाओं को ऊंचाई प्रदान करता है।"कुल मिलाकर डॉक्टर शुक्ल की यह कृति तमाशबीन बने व्यक्ति और समाज को एक नई दिशा देगी इसमें कोई संदेह नहीं।

पुस्तक : लघुकथा का खजाना/ लेखक : डॉ योगेंद्रनाथ शुक्ल/ द्वितीय संस्करण : 2022/ प्रकाशक : किताब घर, 24 / 4855, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली : 2 / पृष्ठ संख्य:184/ मूल्य : सजिल्द: ₹280/-

मजदूर नहीं मजबूत है हम

महलों मे रहने वालों ...
जरा उनकी भी तो सुन लो
विरह व्यथा मजदूरों की,
तुम थाह जरा लेलो
इन्सान वो भोले भाले, करमो का फेर न समझे,
कडी़ धूप मे जल जल जाते है,
तेरे महलों की तरावट मे,
नँगे पाँव चले आते है,
कडी़ धूप की पहरी मे,
जीवन कठिन बहुत है, उनका
सरल बनाये रखना,
महलों मे रहने वाले ,जरा उनकी भी सुनलो।
आँखे सूनी सी कुछकहती है,जरा पढ के लेना।
इन्सान वो भोले भाले,
किस्मत के किस्से ना जाने..,
दो रोटी के टुकड़ों को,
जीवन आधार समझते है,
महलों मे रहने वालों ...
जरा उनकी भी तो सुन लो,
भूख की आग मे जलकर वो,
महलों की तरावट करते है,
तन पे दो कपडे भी मुअस्सर ,
करने मे रह जाते है।
रोटी के दो टुकड़ों को,
जीवन आधार समझते है,
पढ़े लिखे इन्सानों,
जरा उनकी आँखे भी पढ़ लो।
धन दौलत के मानव,
जरा उनकी थाह भी रख लो॥

अभिलेखा

त्रिलोकदीप विशेषांक

विशेषांकों की शृंखला क्यों ?

प्रि य लब्ध-प्रतिष्ठ वरिष्ठजन, प्रिय अग्रज, प्रिय सम-वयस्क, एवं अनुजवत कीर्ति-अभिलाषी पाठक वृंद! आपको हृदय-तल से प्रणाम!

संपर्क भाषा भारती मासिक पत्रिका का 393वाँ अंक आप के सम्मुख रखते हुए अतीव प्रसन्नता हो रही है।

प्रसन्नता इसलिए भी कि इन 393 अंक तक पहुँचते-पहुँचते पत्रिका ने 34 वर्षो का अपना लंबा सफर तय किया है।

इसका अपना इतिहास है। कहना न होगा कि पत्रिका का यह इतिहास मेरे जीवन का

परिचय

यात्रा

धरती

● सुरेश शर्मा

जनसत्ता में 1990 में प्रकाशित समीक्षा

भी सम्पूर्ण नहीं तो आंशिक ही सही, इतिहास है।

मैंने संपर्क भाषा भारती पत्रिका अथवा लेखन के क्षेत्र में जो कुछ भी किया उसे पाठकों के उपर छोड़ दिया, आज के सोशयल मीडिया के 'गाल-बजाऊ' युग में भी यह काम चुप-छाप करता रहा। इस अंक के साथ भी गुमनामी बाबा का सा बर्ताव करना चाहता था किन्तु, पहले त्रिलोक दीप जी ने अनुरोध किया कि कुछ लिखूँ पर मैं हाँ! और ना! के झूले में था। त्रिलोक दीप जी ने अपने अनुर्ध को एक पायदान ऊपर एस्कलेट किया और 'अनुरोध' के स्थान पर 'आग्रह' कहा। मैं फिर हाथी बालक के रवैये पर था तो बिलासपुर से उनका फोन आया कि 'अनुरोध', 'आग्रह' को नहीं मानोगे तो 'आदेश है' कि लिखो।

त्रिलोक दीप जी मेरे पिता जी की आयु से भी बड़े हैं अतः उनके आदेश की अवहेलना का प्रश्न ही नहीं है।

मेरा जन्म 1961 में प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश का है।

पिता स्वर्गीय निशेन्दु ओझा, इलाहाबाद में सीएमपी डिग्री कॉलेज से वर्ष 1960 के दौरान पढे थे। वहाँ डॉ लक्ष्मी नारायण लाल जी (अभूतपूर्व नाट्यकार) ने उन्हें पढ़ाया था।

29 दिसंबर 1965 को पिताजी को स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री जी की अनुकंपा से, योग्यतानुसार, उद्योग भवन, नई दिल्ली में सरकारी नौकरी मिली थी।

मैं भी 1966 में दिल्ली आ गया।

शिक्षा और अध्ययन के दौर में संघर्ष रहा। आरंभिक शिक्षा केंद्रीय विद्यालय, रामकृष्ण पुरम, सेक्टर 8, नई दिल्ली से होते हुए केंद्रीय विद्यालय, आईएनए, नई दिल्ली की रही जिस दौरान मेरे व्यक्तित्व को विधना, कच्ची मिट्टी की तरह रौंद कर कोई मूर्त स्वरूप प्रदान करने का प्रयास कर रहा या रही थी। यह वर्ष 1971-72 का समय था जब मैं केंद्रीय विद्यालय, रामकृष्ण पुरम, सेक्टर 8, में कक्षा 6 का छात्र था।

तब, हम लोग सेक्टर 7, में मकान नंबर 138 में रहा करते थे। यह सरकारी मकान आज भी है, सेक्टर 8-9 के तिराहे के ठीक सामने।

यहीं से विद्यालय पैदल जाना होता था। उस समय स्कूल लाने-लेजाने केलिए वाहन नहीं होते थे। केवल सैनिक छावनियों से ही सैनिकों के बच्चे 'शक्ति' ट्रक में लद कर विद्यालय आया करते थे।

विद्यालय के रास्ते में सेक्टर 8 की मार्केट पड़ती थी, सौभाग्य से वहाँ, पहली मंज़िल पर 'दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी' की एक

संपर्क भाषा भारती केलिए राजीव गांधी जी का पत्र

शाखा खुल गई थी। सदस्य बनने केलिए किसी सरकारी गज़टेड अधिकारी से फ़ॉर्म पर हस्ताक्षर की अनिवार्यता थी। पिताजी के एक परिचित डॉ रामजन्म सिंह, रामकृष्ण पुरम, सेक्टर 7, की सरकारी डिस्पेन्सरी डॉक्टर थे। उन्हों ने फ़ॉर्म पर हस्ताक्षर कर दिए और मैं लाइब्रेरी का सदस्य बन गया।

1971-73 के बीच मैंने पुस्तकालय में रखी हिन्दी साहित्य की सभी पुस्तकें, पुनः

कह रहा हूँ, सभी पुस्तकें पढ़ डालीं। और यह भी कह रहा हूँ कि उसके बाद मुझे एम.ए. (हिन्दी/अङ्ग्रेज़ी) तक भाषा को पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

***

मेरा मानना है कि आज मैं जो भी हूँ वह स्वयं से नहीं हूँ। मुझे निस्वार्थ भाव से गढ़ने वाले इसी समाज के बहुतेरे प्राणी रहे हैं। ऐसा नहीं कि आज इस प्रौढ़ आयु में पहुँच कर मैं घोषित कर दूँ कि 'मुझे गढ़ा जा चुका है।' मैं आज भी कई अद्वितीय शिल्पकारों द्वारा तराशा जा रहा हूँ।

यहाँ इस अवसर पर जब मैं अपने व्यक्तित्व के शिल्पकारों का नमन कर रहा हूँ तो मुझे इतिहास में कुछ पीछे लौटने की अनुमति प्रदान कीजिए। 1971-72 में मैं केंद्रीय विद्यालय, सेक्टर-8, रामकृष्णापुरम में छठी कक्षा का छात्र था। श्री विनोद कुमार बहुगुणा हमें सामाजिक विज्ञान पढ़ाते थे। मुझे यह विषय, समझ आता था इसीलिए अच्छा लगता था। मासिक परीक्षाओं में मुझे हमेश चालीस में तीस के लगभग अंक मिलते थे जो कि कक्षा में सर्वाधिक होते थे। बहुगुणा जी शायद कुछ कविताएं भी लिखते थे। एक दिन उनके मन में जाने क्या आया। हम कक्षा छः के बच्चों को कविता कैसे लिखी जाती है समझाने लगे, फिर बोले सारे बच्चे कविता की चार पंक्तियाँ लिखें। आज मुझे यह ध्यान नहीं कि मैंने पूरी कविता क्या लिखी थी हाँ, अंतिम पंक्ति थी 'समाजवाद को खाने को साम्राज्यवाद बैठा है।'

उन्होंने मुझे पूछा "क्या तुम्हारे पिता जी कविता लिखते हैं?"

"नहीं।" मैंने जवाब दिया।

"समाजवाद को खाने को साम्राज्यवाद बैठा है। इसका मतलब समझाओ।" वे बोले।

नागरिक शास्त्र (सिविक्स) में जितना पढ़ा था उन्हें बता दिया।

साथ ही साम्राज्यवाद की अगली कड़ी

श्री महेंद्र महर्षि सर

उपनिवेशवाद का खुलासा कर दिया।

सिर हिलाते हुए उन्होंने मुझ से समाजवाद का अर्थ भी पूछ लिया। अपनी टूटी-फूटी समझ में मैंने वह भी उन्हें बतला दिया। उस दिन के बाद से श्री विनोद कुमार बहुगुणा सर मेरे मित्र बन गए।

***

ऐसे ही हमारे एक और सर थे श्री महेंद्र महर्षि, आगे चल कर वे दूरदर्शन से सम्बद्ध हुए।

संडे ड्रीम

चाबहार के आगे चित

क्या है चीन-पाकिस्तान इकोनॉमिक कॉरीडोर

1971 में एक दिन मध्यावकाश के दौरान कक्षा के बच्चों के साथ क्रिकेट खेलते पकड़ा गया था।

मेरे बढ़ते हुए कद को ध्यान में रख पिताजी मेरे लिए हाफ पैंट ही बनवाते थे। तो उस दिन की दोपहर मैं कागज को फाड़ कर, गोल कर उन पर साइकिल की ट्यूब की कतरनों से बनाई गई गेंद से हाफ पैंट पहन कर, तेज गेंद कर रहा था। विद्यालय के खेल के इंचार्ज श्री महेंद्र महर्षि सर, पास में खड़े हो कर सीनियर छात्रों से कुछ बात कर रहे थे। हम बच्चों ने उन्हें नहीं देखा था। हमें पता नहीं चला वे काफी देर तक हमारा खेल देखते रहे। हम लोग स्कूल की दीवार पर कोएले से खींची गई विकेटनुमा आकृति में विकेट आरोपित कर के खेलते थे। कई बार बैट्समेन बोल्ड हो जाता और उसकी नीयत खराब होती तो कहता गेंद विकेट से हट कर लगी थी। थोड़ी नोक-झोंक होती। फिर, थोड़ी सी नीचे खिसक आई हाफ पैंट को ऊंचा कर हम फिर गेंद फेंकने चल देते।

लंच समाप्ति की बेल बज चुकी थी, पाँच मिनट ऊपर हो गया था। हम खेल में ही मशगूल थे कि एक सीनियर छात्र आया, उसने कहा : "तुम सब को सर बुला रहे हैं!"

हम सब बहुत ही छोटे बच्चे थे। छठी कक्षा के छात्रों जैसे। डर गए। लगा कि 'आज पनिशमेंट मिलेगी, क्योंकि लंच टाइम के बाद तक खेलते हुए पकड़े गए थे।'

हम बच्चों का समूह श्री महेंद्र महर्षि सर के सामने अपराध बोध लिए, अपने सिर लटकाए, विश्राम की मुद्रा में अर्ध-चंद्राकार वृत्त में खड़े हो गए।

श्री महेंद्र महर्षि सर ने समूह के बच्चों को अपनी-अपनी कक्षा में जाने को कह कर केवल मुझे रोक लिया।

मेरी जान चुनाई में आ गई। लगा कि सारी सजा मुझे ही तय है।

'तुम्हारे पास क्रिकेट की किट है?' मैं पहले

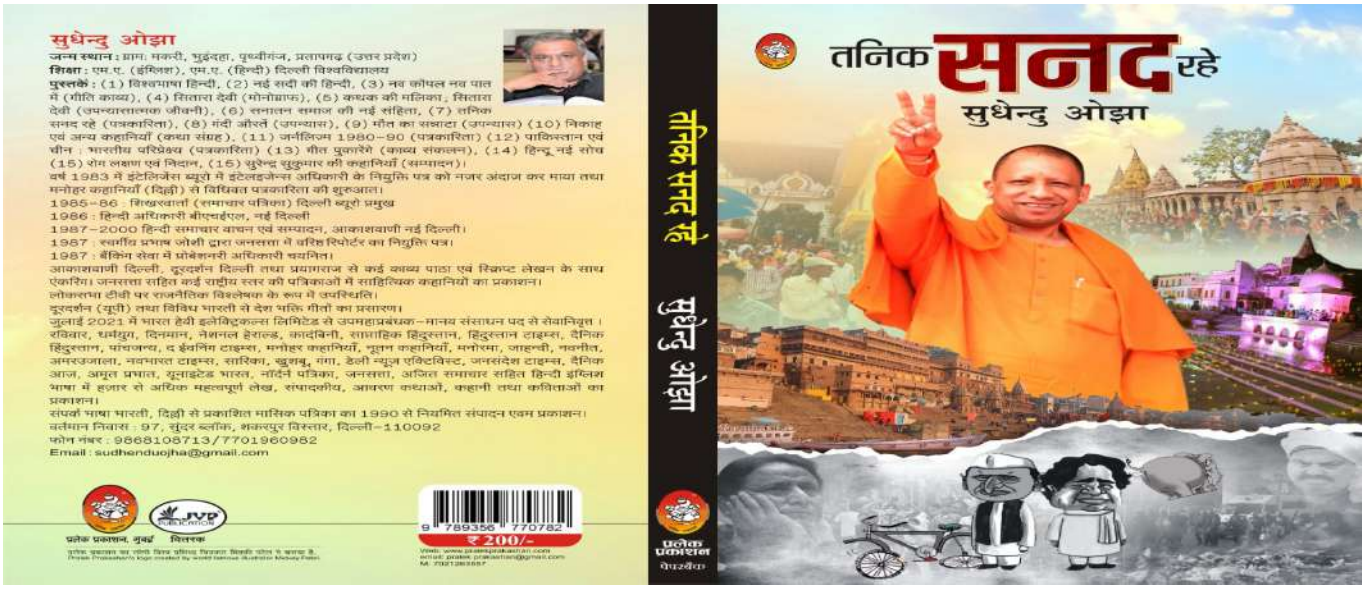

आगामी कई पुस्तकों में से एक

से ही भयभीत था। मुंह से स्वर धीमे से स्वर निकला, 'सर!'।

तब मुझे 'किट' का अर्थ नहीं मालूम था, बस क्रिकेट ही समझ आता था।

महेंद्र महर्षि सर इतना पूछ कर वहाँ से चले गए तब सांसत में पड़ी मेरी जान को कुछ राहत मिली।

मेरे सीनियर जयंत सरकार ने मुझे, अगले दिन सेक्टर बारह के मैदान में किट के साथ सुबह सात बजे पहुँचने को कहा। रामकृष्ण पुरम का सेक्टर बारह का मैदान अब 'संगम थियेटर' बन गया है।

केंद्रीय विद्यालय में उन दिनों सप्ताह में दो यूनीफ़ोर्म हुआ करती थीं। सोमवार से शुक्रवार नेवी-ब्ल्यू पैंट, सफ़ेद शर्ट, चमड़े के काले जूते और शनिवार को सफ़ेद पैंट, सफ़ेद शर्ट और कैनवस (किरमिच) के जूते, जिन्हें टेनिस शूज़ भी कहा जाता था।

अगले दिन मैं नियत समय पर सफ़ेद हाफ पैंट, सफ़ेद हाफ शर्ट और किरमिच के जूते पहन कर मैदान पर पहुँच गया।

मैदान पर फुल साइज़ मैट (जूट की रस्सियों से निर्मित) बिछ चुकी थी।

हमारी पूरी टीम आ चुकी थी।

मैं अपने दोनों हाथ पेट पर बांधे सब को विस्मय से देख रहा था। मुझे आभास नहीं था कि मुझे किस लिए

और अब आपकी पुस्तक आलोकित करने केलिए सौभाग्य प्रकाशन

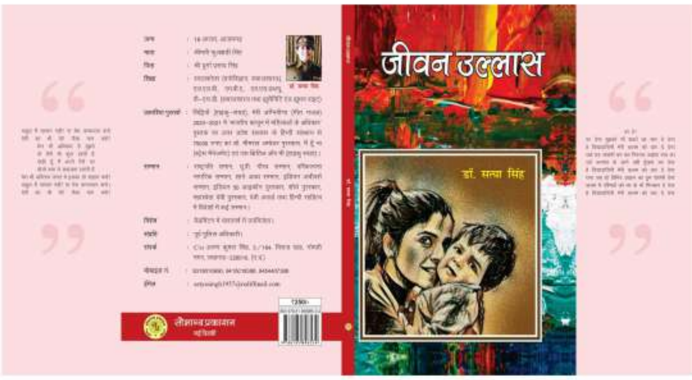

और अब आपकी पुस्तक आलोकित करने केलिए सौभाग्य प्रकाशन

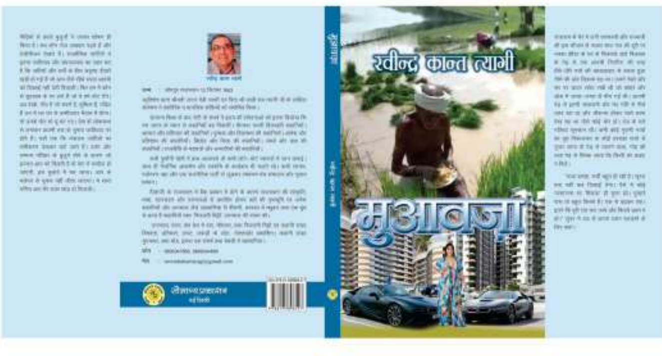

और अब आपकी पुस्तक आलोकित करने केलिए सौभाग्य प्रकाशन

डॉ शेरजंग गर्ग, गोपाल दास सक्सेना 'नीरज' और सुधेन्दु ओझा

डॉ लकस्मि नारायण लाल के सुपुत्र श्री आनंद वर्धन से डॉ लाल का समग्र साहित्य पुनर्प्रकाशन के लिए प्राप्त करते हुए।

बुलाया गया था।

थोड़ी ही देर में टॉस हुआ, कप्तान जयंत कुमार सरकार मैदान में गए। जब वापस आए तो पता चला कि उन्हों ने पहले फील्डिंग का फैसला लिया है।

मुझे देख कर बोले,'यू आर इन।'

मैं कुछ नहीं समझ पाया और पेट पर हाथ बांधे दूसरी तरफ चला गया।

मुझे देखते ही जयंत बोले "व्हाइट पैंट क्यों नहीं पहन कर आए?"

"मेरे पास है ही नहीं।" जयंत ने किसी से लेकर मुझे सफ़ेद पैंट दी और कहा कि "पहन लो, तुम टीम में हो।"

अब मैं समझा कि कल मुझे महेंद्र महर्षि सर ने खेल के बाद क्यों रोका था।

पैंट बड़ी थी पर किसी तरह से मोड-तोड़ कर बेल्ट लगा कर मैंने पैंट पहन ली।

मुझे क्रिकेट खेल का औपचारिक ज्ञान नहीं था। जयंत टॉस कर के आए। उन्होंने पैड पहने, वे विकेट कीपर थे। हम सब उनके पीछे-पीछे मैदान में उतर गए।

जयंत दा, मैं उन्हें यही कहता था क्योंकि मेरी अभी दाढ़ी-मूंछ नहीं उगी थी और उनकी दाढ़ी के बाल आरहे थे, इसलिए वे हम से बड़े थे ने क्रिकेट की नई गेंद मेरी तरफ उछाल दी। मेरी नन्ही उँगलियों में वह चिकनी गेंद रुकी नहीं फिसल गई। रबर की गेंद बना कर खेलनेवाले को क्रिकेट की गेंद की क्या समझ?

पिताजी ने मेरे बहुत आग्रह पर एक या दो रुपए का एक बल्ला सेक्टर एक की मार्किट से खरीद कर दिलवा दिया था। उसका हैंडल पहले दिन ही उखड़ गया था। पिता जी की डांट के भय से उसे चारपाई के नीचे छुपा दिया था।

जयंत ने मेरी तरफ इशारा किया कि बौलिंग करो।

गेंद मेरी छोटी उँगलियों में नहीं फंस रही थी फिर भी मैं उत्साह के साथ बहुत दूर तक अपना बौलिंग रन-अप नाप आया। गेंद को मैदान में रख एक ट्रायल रन लिया तो

आकाशवाणी से समाचार वाचन...

यहाँ भी छप जाया करते थे

गई गेंद

आवरण कथा पांचजन्य

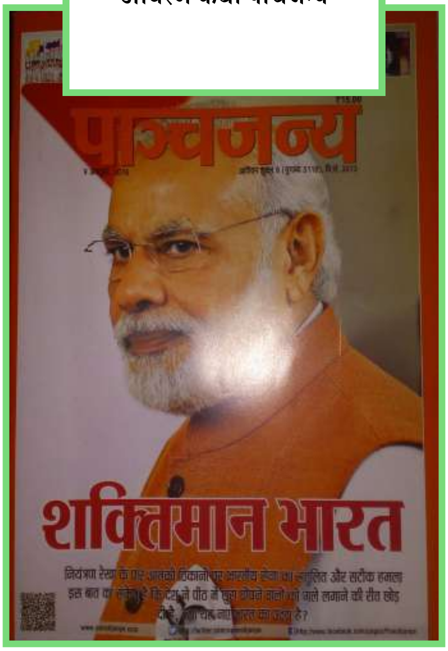

आवरण कथा पांचजन्य

आवरण कथा पांचजन्य

मैटिंग पर आकर फिसल गया। दरअसल, मैंने उन दिनों चलने वाले बाटा के सफ़ेद टैनिस शूज़ पहने हुए थे। नीचे से सपाट होने की वजह से वे मैट पर पकड़ नहीं बना सकते थे। समस्या हुई।

जयंत दा ने फिर किसी के जूते उतरवाए। जल्दी-जल्दी मुझे जूते पहनाए गए। महर्षि सर यह सब दूर से देख रहे थे।

मैं एक बार फिर अपने बौलिंग रन-अप पर पहुंचा। दौड़ना शुरू किया। पहली गेंद बहुत तेज़ी से हाथ से फिसल कर जयंत दा की बाईं बाजू से बहुत दूर, लेग साइड पर वाइड होती हुई सीमा रेखा पार कर गई।

मैंने तय कर लिया कि अब गेंद की पकड़ मुझे समझ आगई है सो दूसरी गेंद ठीक डालूँगा। मेरी दूसरी गेंद का भी वही हल हुआ जो पहली गेंद का हुआ था। गेंद बाउंड्री के बाहर निकल गई, इस बार ऑफ साइड पार वाइड थी। जयंत दा का हाल देखने लायक था। मैं डर के मारे महर्षि सर की तरफ देख ही नहीं पा रहा था। जयंत दा की मजबूरी थी, महर्षि सर ने ही शायद मुझ से गेंदबाजी शुरू करवाने का आदेश उन्हें दिया था।

मैं फिर बौलिंग रन-अप पर पहुंचा। अबकी बार गेंद की दिशा पर ठीक नियंत्रण था। गति तो बहुत ही तेज़ थी। परिणाम यह रहा कि बल्लेबाज़ का मिडल स्टम्प उखड़ कर बहुत दूर जा पड़ा। मेरी पूरी टीम प्रसन्नता से मेरी तरफ दौड़ कर आई। मुझे घेर लिया गया। बहुत प्यार और स्नेह मिला। यह मेरे जीवन के औपचारिक क्रिकेट मैच की पहली विकेट थी। मैंने अपनी दूसरी गेंद पर भी वही कमाल किया। कंधे के बल से फेंकी गोली की मानिंद निकली गेंद, जब तक बल्लेबाज़ समझ पाता उसका मिडल स्टम्प उखड़ कर बहुत दूर जा पड़ा था।

इस मैच के बाद से श्री महेंद्र महर्षि सर भी मेरे मित्र बन गए। स्कूल की क्रिकेट टीम केलिए मैं उनकी खोज सिद्ध हुआ।

"सुधेन्दु, सुरेश लूथरा की तरह गेंद करता है।" कई बार उन्होंने जयंत दा के सामने यह बात कही। मैं सुरेश लूथरा नामक किसी व्यक्ति या खिलाड़ी को तब नहीं जानता था। छः-सात वर्ष के बाद जब सीके नायडू टीम में चयनित होने के बाद फिरोज़ शाह कोटला के मैदान पर दिल्ली रणजी टीम के खब्बू तेज़ गेंदबाज़ सुरेश लूथरा को गेंद डालते देखा तो समझ आया कि महर्षि सर किस सुरेश लूथरा से मेरी गेंदबाजी की तुलना करते थे।

महेंद्र महर्षि सर ने मेरा प्रार्थना में उपस्थित माफ कर दिया था।

मुझे आत्मिक प्रसन्नता है कि आज भी मुझे फेसबुक पर उनका आशीर्वाद मिलता रहता है।

***

"मैं वैसा हूँ नहीं जैसा बाहर से

आवरण कथा पांचजन्य

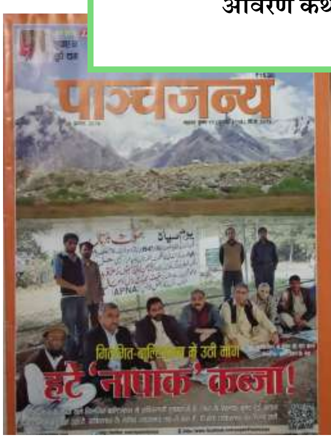

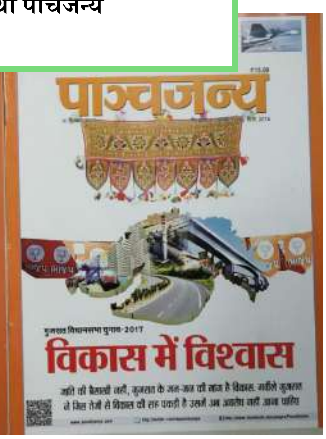

आवरण कथा ग्रजुएट

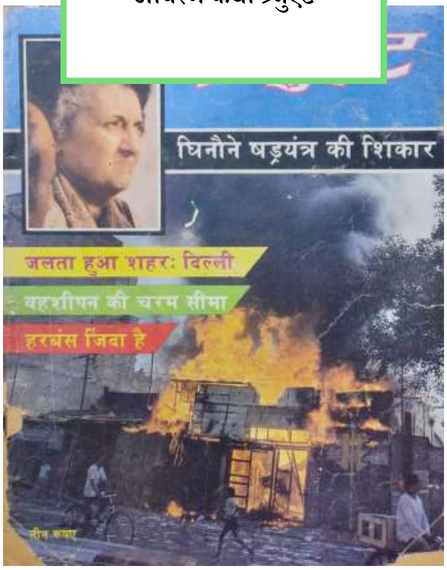

एकमात्र दिल्ली ब्यूरो चीफ

शिखरवार्ता 1985

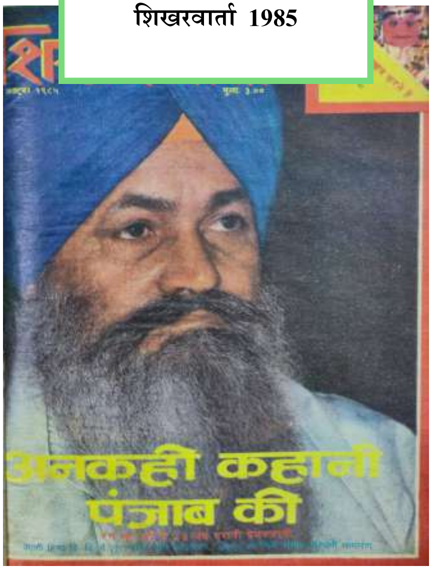

एकमात्र दिल्ली ब्यूरो चीफ

शिखरवार्ता 1985

नज़र आता हूँ।" जीवन की सम-विषम परिस्थितियों में बराबर खुद से यही कहता रहता हूँ।

1980 के दशक का प्रारम्भिक दौर।

कॉलेज क्रिकेट (उससे पूर्व दिल्ली की कूच बिहार ट्रॉफी) के साथ-साथ सक्रिय लेखन और रेडियो कार्यक्रमों की शुरुआत हो चुकी थी। दिल्ली विश्वविद्यालय की अंतर कॉलेज कविता प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेने के साथ हिन्दी की तत्कालीन प्रमुख पत्रिकाओं यथा धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, नवनीत, रविवार, दिनमान, नेशनल हेराल्ड और वीर अर्जुन इत्यादि में लेखन की शुरुआत हो चुकी थी।

दूरदर्शन अपने शैशव काल में था। कमलेश्वर फिल्म के साथ-साथ दूरदर्शन पर भी अपनी वक्तृता की छाप छोड़ रहे थे।

मैं, (अब) डॉ रंजन सिंह (स्वर्गीय डॉ शंकर दयाल सिंह के ज्येष्ठ पुत्र), सत्यपाल सक्सेना, बाला सुंदरम गिरि (वर्तमान में जनसत्ता में कार्यरत), रवीन्द्र वर्मा (राष्ट्रीय मोर्चा का संयोजक, पूर्व प्रधान मंत्री स्वर्गीय नरसिम्हा राव को न्यायालय तक घसीटने वाला) कॉलेज के साथ-साथ दूरदर्शन के उपग्रह चैनल पर कविता बाँच रहे थे। ऐसे ही एक कार्यक्रम का संचालन दिनेश शाकुल ने किया था, जो आगे चल कर धारावाहिक 'कबीर' में मुख्य किरदार के रूप में सब के सामने आए। अंबिरीश पुरी जी के उस कार्यक्रम में मेरे साथ आज की प्रतिष्ठित कवयित्री अनामिका भी थीं।

***

आल इंडिया रेडियो तो विद्यालय समय से ही दूसरा घर सरीखा था, यहाँ मैंने कक्षा ग्यारहवीं (1978) से जाना शुरू किया था। स्कूल में ही था तो एक दिन चप्पल पहन कर ही आल इंडिया रेडियो पहुँच गया। किसी ने कहा था अच्छा बोलता हूँ, युव-वाणी में ऑडीशन दे

कहानी 'चादर' जनसत्ता

आओ। तब सुरक्षा की दृष्टि से इतनी रोक-टोक न थी, रेडियो स्टेशन में पहुंचाना इतना कठिन न था। मैंने ऑडीशन पास कर लिया।

युव-वाणी अपनी प्रतिभा को परिमार्जित करने का सुनहरा अवसर प्रदान करता था। श्रीमती वेद क्वात्रा उन दिनों युव-वाणी की प्रभारी थीं। उनके वात्सल्य को मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा ने अपनी उंगली पकड़ कर मुझ बालक को चलना सिखाया। युव-वाणी की प्रभारी महिला के वात्सल्य का नमूना देखिए। मैं घर से चप्पल पहन कर रेडियो स्टेशन पहुँच जाता था।

तब कोई सुरक्षा घेरा नहीं होता था। एक छोटा सा रिसेप्शन होता था जहां बड़ी सरलता से आगंतुक पास बन जाता था। मैं जैसे ही युव-वाणी पहुंचता था, मैडम अपने स्टेनोग्राफर शर्मा जी को आवाज़ देतीं और वे लकड़ी की कुर्सी ला देते।

'तुम्हारा हिन्दी का उच्चारण बहुत बढ़िया है। उर्दू के अल्फ़ाज़ और सुधार लो।' वे मुझे कहतीं।

मैडम उर्दू-फ़ारसी की जानकार थीं, उन्हें मेरी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बहुत अच्छी लगती थी। एक पन्ने पर वे मुझे उर्दू-फ़ारसी के ढेरों शब्द लिख कर देतीं फिर मुझे उनका

प्रयाग शुक्ल जी द्वारा 28 जुलाई 1985 में प्रकाशित

उच्चारण सिखलातीं। एक-घंटा, दो घंटा मैं उनके पास बैठा रहता।

आज सोचता हूँ वो कौन थीं मेरी? वह मेरी शिल्पकार थीं। मुझे गढ़ रही थीं। निस्वार्थ भाव से।

***

वर्ष 1985 में, जिस समय भोपाल में गैस त्रासदी घटित हो रही थी मैं दिल्ली की जामा मस्जिद में शाही ईमाम शेख अब्दुल्ला बुखारी का इंटरव्यू कर रहा था- शाह बानो मसले पर। बुखारी साहब बहुत कुछ कह गए। इंटरव्यू खत्म होने के बाद उन्हों ने मेरा मजहब पूछा। मैं मुस्कुरा दिया कुछ बोला नहीं। वे मेरे उर्दू उच्चारण को लेकर पाशो-पेश में थे। मैं मैडम वेद क्वात्रा को धन्यवाद कर रहा था।

यहीं मेरा साबका डॉ. अश्विनी से हुआ जो आगे चल कर मनोहर श्याम जोशी जी के 'हमलोग' सीरियल के प्रमुख पात्र बने। मैं युव-वाणी का 'महफिल' कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाला था। कार्यक्रम शाम को खेल समाचारों के बाद सात बज कर पाँच मिनट से साढ़े सात बजे तक लाइव जाता था।

मैंने दिलीप कुमार और निम्मी अभिनीत फिल्म 'उड़नखटोला' का एक गीत, 'ओ दूर के मुसाफिर हमको भी साथ लेले रे, हम रह गए अकेले' को कार्यक्रम के मध्य में रख दिया था। डॉ. अश्विनी भी युव-वाणी से होकर निकले थे। उन्होंने मेरी स्क्रिप्ट पढ़ी और सुझाव दिया कि इस गाने को सब से अंत में रख कर, और इसके बजते-बजते वॉइस ओवर पर कार्यक्रम से रुखसत होऊँ। मैंने वैसा ही किया जैसा डॉ. अश्विनी ने सुझाया था।

आगे चल कर कमला शास्त्री, करुणा श्रीवास्तव, डॉली मुखर्जी (दाने अनार के, रघुवीर यादव के साथ) सीरियल वाली युव-वाणी की प्रमुख बनीं।

युव-वाणी की सभी प्रभारी मेरी मित्र बन गईं।

मैंने युव-वाणी के लगभग सभी कार्यक्रमों की उद्घोषणा प्रारम्भ कर दी थी।

ऐसा ही स्नेह और प्यार मुझे कमला शास्त्री, डॉली मुखर्जी और करुणा श्रीवास्तव से भी मिला। पता नहीं क्या प्रतिभा तलाश ली थी उन लोगों ने मुझ में कि मुझे वे लोग श्री निगम जी के पास लेगए। उम्र इतनी कम थी कि उनके ऊंचे ओहदे का नाम नहीं आता था। ऑल इंडिया रेडियो के भवन में उनका बड़ा सा कक्ष। मैं कुछ नहीं बोला। मेरा परिचय दिया गया कि 'ये बहुत अच्छे हैं, इनकी आवाज़ भी अच्छी है और हिन्दी कमाल की है।' निगम जी ने मुझे रेडियो के कई कार्यक्रम दिए। एक दिन बोले अखिल भारतीय डाक-तार विभाग के फ़ुटबाल टूर्नामेंट का फ़ाइनल अंबेडकर स्टेडियम में खेला जा रहा है। जाओ टीम लेजाओ। रनिंग कमेंट्री करनी है, अकेले।

आवरण कथा 1985

आवरण कथा 1985

निगम जी ने एक दिन बात करते-करते मेरी जांघ पर हाथ रख दिया जिसे मैंने झटक कर दूर कर दिया, इसके बाद से मैं उन्हें कभी नहीं मिला।

***

श्री करतार सिंह जी आरके पुरम, सेक्टर 8 केन्द्रीय विद्यालय के वाइस प्रिंसिपल बन कर आए जो पिता जी के परिचित थे।

करतार सिंह जी के एक भाई थे, धीरेन्द्र। वे उनकी दूसरी माता के थे। पर स्नेह बराबर था। धीरेन्द्र ने अपनी इच्छा से किसी पंजाबी लड़की से विवाह कर लिया था। उस समय यह कृत्य अक्षम्य था।

धीरेन्द्र सर भी उसी विद्यालय में ड्राइंग पढ़ाया करते थे। कई पेंटिंग उन्होंने दिखाई जो उत्तर प्रदेश अकादमी से पुरस्कृत थीं। तब हम को इस विषय में ज़्यादा जानकारी नहीं थी पर धीरेन्द्र सर ने हमें कल्पना करना सिखलाया। वे हमें ड्राइंग की बारीकियों को समझाते। हम बच्चे भी कुछ

‘सब कुछ लूटा के’ कहानी जनसत्ता

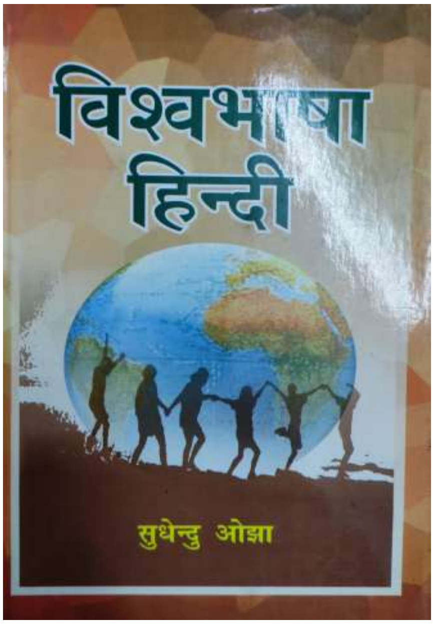

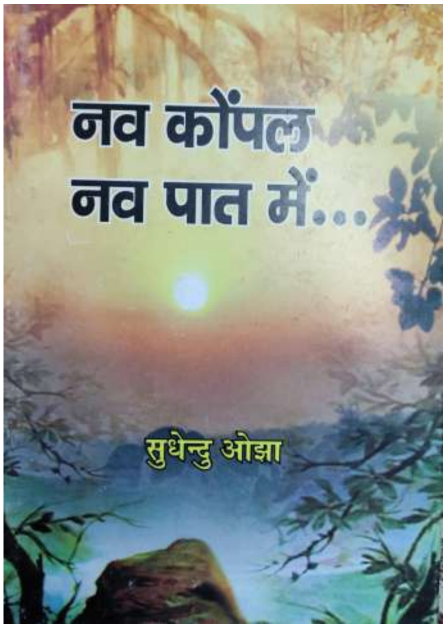

-कुछ ड्राइंग समझने लगे। जब हम सब कुछ ड्राइंग करने लगे तो उन्होंने कुछ चुनींदा बच्चों पर विशेष ध्यान देना शुरू किया, इत्तिफाक़ से मैं भी उस समूह का सदस्य रहा। धीरेन्द्र सर की प्रेरणा पर ही हम ‘शंकर्स आर्ट कॉम्पटिशन’ में हिस्सा लेने लगे। तब यह प्रतियोगिता बाराखंभा रोड पर स्थित आज के मॉडर्न स्कूल में आयोजित होती थी। हम प्रतियोगिता में पुरस्कृत तो कभी नहीं हुए किन्तु एप्रिसिएशन लेटर अवश्य हासिल कर लाते रहे। हम से अब धीरेन्द्र सर की भी मित्रता हो चली थी। आगे चल कर आदरणीय श्री योगेन्द्र पाल अग्रवाल जी (उपन्यास लेखिका श्रीमति लता अग्रवाल उनकी धर्म पत्नी हैं) मेरे हिन्दी के शिक्षक बने। तनसुख राम गुप्त प्रकाशन संस्थान उनको जितनी पुस्तकें देता था वे सब मुझे दे देते थे, यह कहते हुए कि इन पुस्तकों केलिए यह बालक सर्वथा उपयुक्त है। मैं जब माया/मनोहर कहानियों से जुड़ा तब भी वे मुझे तलाशते हुए घर आए, मेरे पिता जी से मिले। साथ ही अपना लिखा हुआ गद्य थमा गए कि इसे दुरुस्त कर देना। श्री योगेंद्र पाल अग्रवाल जी भी मेरे मित्र बन गए। आगे चल कर मैंने लता अग्रवाल जी के उपन्यास ‘रास्ता आगे मुड़ता है’ में अपनी अल्प-बुद्धि से थोड़ा सा योगदान किया। यही स्थिति इतिहास के अध्यापक श्री मुरारी लाल धीर और राजनीति विज्ञान के अध्यापक श्रीयुत श्री राम गुप्त जी के साथ भी रही।

“देखो लला जी यही लड़का है जो आईएएस बन सकता है। पर मैं जानता हूँ यह बनेगा नहीं। हाँ! अगर यह अनुसूचित वर्ग से होता तो अवश्य बन जाता।“ श्री मुरारी लाल धीर जी पूरी कक्षा को सुना कर कहते थे। मैंने उनकी बात को गंभीरतापूर्वक नहीं लिया पर वे और श्रीयुत श्री राम गुप्त जी भी मेरे मित्र बन गए। श्री गोयल सर हमें इंगलिश पढ़ाते थे। कक्षा के शरारती बच्चे उन्हें गुप-चुप ‘नेगेटिव’ कहते थे। बहुत पूछने पर एक ने बताया, उनका रंग सांवला है बाल सन की तरह सफ़ेद। एक दम फोटो के नेगेटिव के माफिक। क्लास के बच्चे इसी तरह पोलिटिकल साइन्स के सर श्रीयुत श्री राम गुप्त को भी ‘मक्खी सर’ कहते थे। वे दाढ़ी-मूंछ नहीं रखते थे पर मूंछ के नाम पर नाक के नीचे के स्थान पर शेव नहीं करते थे।

क्रमशः

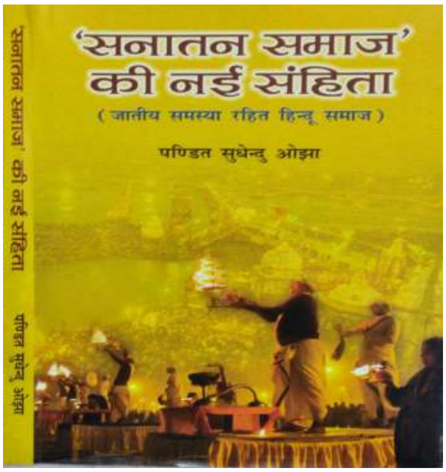

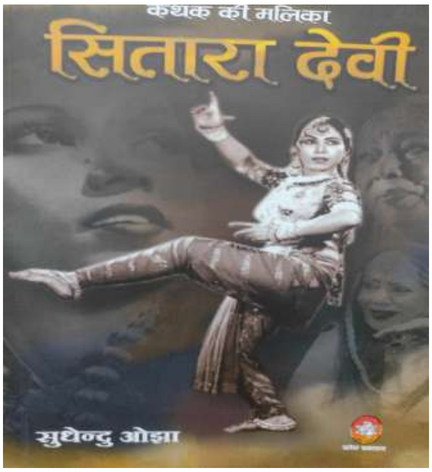

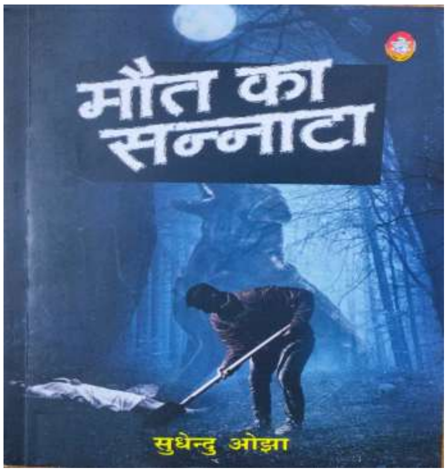

मेरे मित्र, श्री त्रिलोक दीप

मुझे यह कहने में गर्व है कि त्रिलोक भाई, सिर्फ भाई ही नहीं, सुख– दुख के मेरे दोस्त भी हैं। उनसे मेरी भेंट बड़े भाई श्री कन्हैयालाल नंदन के मार्फत हुई थी। नंदन जी तब डालमिया ग्रुप के एक साप्ताहिक 'संडे मेल' के संपादक थे और त्रिलोक दीप उसके कार्यकारी संपादक। त्रिलोक जी में मैंने पाया कि वह अपने बारे में बहुत ''चुप्पे'' हैं। नहीं तो, देखने में आता है कि हिन्दी के अधिकतर लेखक, वि ोशकर सोशल मीडिया में पारंगत युवा वर्ग अपनी स्वरचित महानता के मुगालते में ऐसा व्यस्त हैं कि वह न अन्य किसी को पढता है, न वि व साहित्य से परिचित है। आठ–दस कॉलम क्या लिखे कि वह महान बन बैठा। ऐसे आत्म लाघा के गुब्बारों को वह खुद ही हवा भरकर फुलाता है और कुछ समय त्रिलोक भाई इसके विपरीत हैं। वह कभी न अपने संघर्शों का जिक्र करते हैं न अपनी उपलब्धियों का। यदि किसी लेखक का लेख, उनके सामने है, तो उनकी चिन्ता केवल इतनी है कि पत्रिका में इसे कैसे प्रकाशित किया जाये कि इस में चार चाँद लगे। कार्टून कैसा हो? ''ले आडर'' से इसे कैसे आकर्शक बनाया जाये? वह अपने काम के दायित्व में ऐसे डूबते है कि उनके सामने सिर्फ चिन्तन और सोच के सिवाय ''संडे मेल'' के कुछ नहीं रहता है।

यों उनका जीवन आपदाओं में कटा है। ग्यारह अगस्त, 1935 में रविवार को तहसील फालिया जिला गुजरात (अब पाकिस्तान) में जन्मे त्रिलोक को छुट्टी ऐसी फुरसत कभी नसीब न हुई। शिक्षा की भुारुआत डेनीज स्कूल, रावलपिण्डी और बाद में माधवरान 'सप्रे' स्कूल रायपुर में हुई। किस को इस भौगो. लिक छलांग से आ चर्य न हो, इसलिये यह बताना भी आव यक है कि पाँच अगस्त को साम्प्रदायिक दंगों के कारण सात अगस्त तक यह और इनका परिवार टिन्टी, जिला बस्ती आ गये। वाया लाहौर और ल खनऊ। त्रासद दुर्घटनायें इनके जीवन का अनावश्यक और नियमित ही नहीं अनिवार्य अंग रही हैं। वर्ना यह कितनों के साथ संभव है कि खौलती कढ़ाई की एक बूँद से कोई अपनी आँख गँवा बैठे? अथवा बिच्छू के डंक से अड़तीस वर्श की अल्पायु में किसी के पिता जी चल बसें? यह सब मेरे मित्र त्रिलोक भाई के साथ हुआ पर क्या मजाल कि उनके चेहरे पर शिकन तक हो।

मुझे कभी–कभी उनका व्यक्तित्व एक पहाड़ सा लगता है जो दूर से सिर्फ किसी टेकरी का भ्रम दे पर जैसे–जैसे उसके पास जाइये तो उसकी विशालता का अनुमान, अनुभव और एहसास हो। त्रिलोक भाई ऐसे ही हैं। भाई पाकिस्तान गये तो मेरे लिये वहाँ के खास एमरेल्ड के गिलास ले आये। उनकी यह भेंट मैंने आज तक संजोकर रखी है। कौन कहे, यह उनका स्वभाव है कि जो दूसरों को कुछ उपहार देने में प्रसन्न रहता है। एक दिन अचानक मुझे संजय डालमिया जी से मिलवा दिया। जहाँ सौभाग्यवश, मेरी सिन्धिया स्कूल के सहपाठी श्री डागा से भी भेंट हो गई। इस प्रकार की भलाई त्रिलोक भाई का स्वभाव क्या, आदत है। मैंने देखा है कि हर बड़े व्यक्ति के चरित्र का यह अंग है। दिल्ली में एकबार मुझे दिल का दौरा पड़ा। मैंने पाया कि आदरणीय विद्यानिवास जी और कमलेशवर जैसी हस्तियां मेरी खैरियत और हाल चाल लेने अस्पताल या घर पधारी। उनमें बड़े भाई नंदन जी और त्रिलोक भाई भी सम्मिलित थे। ऐसे संवेदनशील व्यक्तियों को क्या कोई भूल सकता है? यही सिफत मैंने श्रीलालजी और के.पी. भाई में पाई। श्रीलालजी अस्वस्थ

चल रहे थे। मैं अवकाश प्राप्त कर लखनऊ आ चुका था और श्रीलाल जी के दर्शनार्थ अक्सर उनके इन्दिरा नगर वाले घर जाता था। मैंने पाया कि स्वागत–सत्कार और अपनी पुस्तक भेंट करने में वह कभी चूक न करते थे। दीगर है कि मधुमेह से पीड़ित श्रीलाल जी जो हमारी लाई उनकी पसंदीदा आइस्क्रीम खाने की अनुमति उनकी बहू साधना कृपा पूर्वक दे देती थी। के.पी. भाई मुझे उलहना देते कि ''तुम श्रीलाल जी के यहाँ आकर उसे फुलस्टॉप न मानो, थोड़ा आगे भी आ जाया करो।'' दरअसल इन्दिरा नगर के अगले मोड़ पर उनका भी आवास था। त्रिलोक भाई में भी इन सब महान व्यक्तियों के समान स्नेह का अंतहीन सागर है। मेरी खोज–खबर लेने वह कभी–कभी लखनऊ भी पधारे हैं। उनका आना हम सब के लिये एक उत्सव सा होता है। यही सौभाग्य और कृपा नंदन जी भी जीवन–पर्यन्त करते रहे।

हमें यह नहीं भूलना है कि उपरोक्त आपदाओं के बाद वह अपनी मौसी के अनुरोध पर रायपुर आ गये जहाँ माध्यमिक शिक्षा 1954 में पूरी की और टाइपिंग सीखने के पश्चात 1955–56 में वनसंरक्षण विभाग में सेवा के उपरान्त वह राज्यसभा में अपर डिवीजन क्लर्क के बतौर 1965 तक कार्यरत रहे। रायपुर रहकर उनकी लेखन के प्रति रुचि जागी। इसी बीच उनका चयन दिनमान में उप संपादक के पद पर हो गया। उल्लेखनीय है कि यहाँ अज्ञेय जी जैसे विद्वान और साहित्य–पुरुश संपादक थे। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि त्रिलोक भाई ने अपनी राज्यसभा में सेवा के दौरान अपना बी.कॉम का अध्ययन भी पूरा किया। अपनी जनवरी 1966 से लेकर 1969 तक के दिनमान के सेवाकाल में त्रिलोक भाई ने यू.एस., सोवियत रूस, कैनाडा और पाकिस्तान आदि की यात्राएँ ही नहीं की, उनके यात्रा–विवरण भी लिखे। इसी दौरान उनके बाल–लेखन, कहानी, उपन्यास आदि भी प्रकाशित और प्रसिद्ध हुए।

त्रिलोक जी ऐसे मित्रों को मैं अपने जीवन की अनमोल धरोहर मानता हूँ। ऐसे मित्र होना मेरे जीवन का सौभाग्य है, वर्ना सुख के साथी तो जीवन में सबको मिल जाते हैं, दुख–दर्द अपनो की पहचान का समय है। उसमें कम ही खरे उतरते हैं। त्रिलोक भाई की सम्पादकीय सूझबूझ का मै कायल हूँ। मुझे याद है आज से दो–तीन दशक पहले भी पेट्रोल डीजल की कीमतों में अनपेक्षित उछाल आया था। तब पैदल चलने या साईकिल के प्रयोग का बड़ा भाोर था। तब मैंने एक व्यंग्य लिखा था, ''शोफर ड्रिवन साईकिल''। उस में चालक का साईकिल के डंडे पर स्थापित सचिव और पीछे फाइलों के ढेर का वर्णन था। त्रिलोक भाई ने इसी का कार्टून बनवा कर व्यंग्य लेख में चार चाँद लगवा दिये थे। यों दिनमान में अज्ञेय जीका प्रशिक्षण कौन भूल सकता है? ऐसे भी उनका संपादकीय प्रतिभा का सब लोहा मानते थे, नंदन जी ऐसे अनुभवी संपादक भी।

मैंने जीवन में लगन और परिश्रम से चयनित क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने वाले कम ही व्यक्ति देखे हैं। श्री त्रिलोक दीप उनमें से एक हैं। यों भी कहा जा सकता है कि यह एक प्रतीक और उदाहरण हें। नहीं तो कितने व्यक्ति ऐसे होंगे जो जीवन की हर प्रकार की आपदा झेल कर स्वँय के प्रयासों से अपने चुनिन्दा क्षेत्र में सफलता हासिल करने समर्थ हो? फिर भी अपनी उपलब्धियों के विशय में मौन रहे? उल्टे, परिचित की समस्याओं को सुने और सहानुभूति के साथ उनके समाधान का प्रयास करें? इस मानवीय संवेदना में त्रिलोक भाई अनुकरणीय हैं। उनसे भेंट कर या उन्हें जानकर कोई भी नेक इंसान बनने की प्रेरणा हासिल कर सकता है।

मुझे पूरी आशा ही नहीं विश्वास भी है कि त्रिलोक भाई ऐसे ही कामयाबी के साथ जीवन की भाताब्दीय पारी खेलेगें औंर दूसरों को अपनी नेकनीयती से प्रेरित करते रहेंगे।

□□□

अभिव्यक्ति की आज़ादी के पक्षधर: त्रिलोक दीप

प्रकाश उदय

कोई भी व्यक्ति अपरिहार्य नहीं होता- अज्ञेय के इस कथन को वरिष्ठ पत्रकार और लेखक त्रिलोक दीप ने पूरी तरह से आत्मसात कर लिया है। वे पत्रकारिता के अपने गुरु अज्ञेय के दिये इस मूल मंत्र की रोशनी में अपने जीवन में आने वाले हर शख्स को महत्वपूर्ण मानते हैं। यह बात उस समय और भी स्पष्ट हो गई जब कुछ महीने पहले प्रेस क्लब दिल्ली में रूबरू मेरी उनसे पहली मुलाकात हुई। मैं एक वयोवृद्ध वरिष्ठ पत्रकार के स्नेहिल व्यवहार से आश्चर्यचकित था। बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ, मुझे आभास हुआ कि देश दुनिया का कोई भी मुद्दा उनके ज्ञान- विवेक से अछूता नहीं है। उम्रदराज होने के बावजूद उनकी चेतना बेमिसाल है।

छत्तीसगढ़ के लिए उनके हृदय में विशेष आग्रह है। देश के बंटवारे के बाद उनका बाल्यकाल रायपुर में ही बीता। माधवराव सप्रे स्कूल से उन्होंने पढ़ाई की। वे स्वयं को छत्तीसगढ़ की माटी का ऋणी मानते हैं, जिसने उन्हें उस वक्त संभाला जब उसकी उन्हें सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी। अपने बचपन के रायपुर की स्मृतियों का उल्लेख करते समय मैंने उनकी आंखों में कई दृश्यों को सजीव होता पाया। उनकी स्मृतियां और उनके विचार उन्हीं की तरह स्पष्ट और सुलझे हुए हैं। त्रिलोक दीप ने कई देशों की यात्राएं की हैं, उनकी यात्रा रिपोर्टिंग तक ही सीमित नहीं रही बल्कि उन्होंने जहां भी कदम रखा वहां के पूरे धरातल को अपनी पारखी निगाहों से माप लिया। उनके यात्रा वृतांत अत्यंत रोचक हैं। जब वे तत्कालीन सोवियत संघ की बात करते हैं तो साइबेरिया का सौंदर्य वर्णन करते नहीं थकते और जब अमेरिका की बात होती है तो वे वहां के मूलनिवासी और आप्रवासी की शिनाख़्त करते नज़र आते हैं। लेखकीय दृष्टिकोण से त्रिलोक दीप के बिम्बअभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मुखरित करते हैं।

'दिनमान'उनकी स्मृति में उज्जवल नक्षत्र की तरह है। उन्होंने बड़ी बेबाक़ी के साथ बताया कि, किस तरह सचिवालय की सरकारी नौकरी को छोड़कर हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय के कहने पर वे'दिनमान'में आ गए। बतौर उपसंपादक'दिनमान'में बहुत से प्रसंग उनके पास हैं। चर्चा के दौरान मेरी दिलचस्पी 'दिनमान'में इसलिए भी थी कि, मेरे पिताजी इस साप्ताहिक पत्रिका को नियमित रूप से पढ़ा करते थे, उन्हें 'दिनमान' में प्रकाशित राजनीतिक विश्लेषण में विशेष रूचि थी। मुझे याद है उन दिनों मैं पिताजी के साथ भिलाई से साइकिल पर दुर्ग रेलवे स्टेशन जाया करता था। वे वहाँ से'दिनमान'और उर्दू के कुछ रिसाले (अख़बार) लिया करते थे। हम बच्चों के साथ वे'दिनमान' की कुछ विशेष सामग्री पर चर्चा किया करते थे, उन्हीं दिनों शायद मैंने त्रिलोक दीप का नाम उनके मुंह से सुना था और वह मेरे ज़ेहन में कहीं अटक कर रह गया था। अब जबकि हम एक टेबल पर आमने-सामने बैठकर बातें कर रहे थे, यकीन नहीं हो रहा था कि यह वही त्रिलोक दीप हैं जिनका नाम कभी पिताजी के मुंह से सुना करते थे। यहाँ अज्ञेय की उक्ति फिर से सार्थक हो उठती है कि'कोई भी व्यक्ति अपरिहार्य नहीं होता।' त्रिलोक दीप से मिलना, उनसे बातें करना- एक सुखद अनुभूति है। उन्होंने अपनी ज़िंदगी की बहुत सारी यादों को अपने ज़ेहन में महफ़ूज़ रखा है। मुझे पूरा यकीन है कि वे उन्हें छूते हैं, उन्हें गुदगुदाते हैं और उनसे मिली ऊर्जा को पाकर ज़िंदादिली के साथ हर एक दिन को भरपूर जीते हैं। त्रिलोक दीप अपनी उपलब्धियों और अनुभवों के उजाले में जगमगाते सितारे हैं।

(आकाशवाणी रायपुर में कार्यरत हैं)

आशीष राजौरिया

आदरणीय अंकल!

आप को जितना मैं जानता हूँ उस हिसाब से आप की जीवन यात्रा को कुछ पन्नों में समेटना संभव नहीं है। आप ख़ुद के बारे यदि लिखें तो शायद न्याय हो पाये।

आप ने देश के कई काल खंड देखे हैं। उत्कर्ष भी और एमर्जैन्सी भी देखी है।

मुस्कुराते चेहरे से नक़ाब भी उतरते देखा है।

बचपन से आप के लेख पढ़े है। आप की देश परिस्थिति काल को विलक्षण क्षमता है।

इतना लय बद्ध लिखते हैं कि लगता है कोई कविता पढ़ रहे हों। आप सदा मुस्कुराते रहें, स्वास्थ्य रहें यही प्रभु से कामना है।

सादर प्रणाम

पत्रकारिता में जो स्थान आप ने बनाया और पाया है वो ज़्यादातर पत्रकारों के लिये स्वप्न ही रह जाता है।

राजनीति पर लिखने वाले ज़्यादातर लोग अपना झुकाव छुपा नहीं पाते परन्तु आप ने हमेशा बहुत सटीक लिखा और व्यक्तिगत पसंद नापसंद को लेखनी को प्रभावित नहीं करने दिया। पूरे देश की राजनैतिक गतिविधियों पर स्टाक नज़र रखना कोई आसान काम नहीं है।

ज़िन्दा दिल इतने के दोस्तों को कभी नहीं भूलते हैं, हफ्ते में एक शाम दोस्तों के नाम निश्चित है।

बड़े बड़े व्यापारिक घराने आप से देश की राजनैतिक दिशा और दशा को समझते थे।

आप सदा मुस्कुराते रहें, स्वास्थ्य रहें यही प्रभु से कामना है।

अरुण कुमार नैथानी

सृजन-सरोकारों के मार्गदर्शक दीप: त्रिलोकदीप

व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में सक्रिय हो, उसकी सफलता का मापदंड उसकी मानवीय मूल्यों के प्रति ईमानदारी और स्पष्टवादिता होती है। कह सकते हैं कि वह इंसान अच्छा होना चाहिए। खासकर सृजन के क्षेत्र में सक्रिय लोगों से उम्मीद की जानी चाहिए कि वे जैसा लिखते हों, वैसे ही व्यवहार में दिखते हों। यह नहीं हो सकता कि लेखन में आदर्श और निजी जीवन में अहंकार और दोहरा चरित्र। व्यवहार में ईमानदारी व सहजता ही किसी इंसान को बड़ा या छोटा बनाती है। इस कसौटी में वरिष्ठ साहित्यकार व पत्रकार त्रिलोकदीप जी खरे उतरते हैं।

उल्लेखनीय है कि त्रिलोकदीप जी का परिचय महज इतना ही नहीं है कि वे दशकों तक हिंदी पाठकों के दिलों में राज करने वाली'दिनमान'और'संडे मेल' जैसी बहुचर्चित पत्र-पत्रिकाओं में सृजन और गुणवत्ता की पत्रकारिता करते रहे हैं। उससे भी महत्वपूर्ण यह कि उनकी पत्रकारिता का मिजाज सकारात्मक, रचनात्मक और जीवन का उज्ज्वल पक्ष उजागर करने वाला रहा है। यह खासियत उनके व्यक्तित्व में भी शिद्दत के साथ महसूस होती है। मुझे ऐसा सौभाग्य तो

नहीं मिला कि उनके सानिध्य में काम कर पाता, लेकिन संयोगवश दैनिक ट्रिब्यून में रविवारीय स्तंभ में शुरू हुए एक कालम के जरिये उनसे संपर्क में आया। संपादक मंडल के साथ यह तय हुआ कि वे दिनमान के दौर की पत्रकारिता और पत्रकारों के जीवन से जुड़े रोचक और प्रेरक पहलुओं से दैनिक ट्रिब्यून के पाठकों से रूबरू कराएंगे।

उन दिनों मैं संपादकीय पेज के साथ रविवारीय पत्रिका'रविवासरीय'का भी संपादन कर रहा था। दैनिक ट्रिब्यून के रविवारीय मैगजीन'लहरें'में त्रिलोकदीप जी का साप्ताहिक कालम शुरू हुआ। कालम का नाम'वे दिन, वे लोग'रखा गया। कालम'का संपादन करते हुए त्रिलोकदीप जी के रचनाकर्म, गहरे अनुभवों व भाषा शैली और व्यक्तित्व से रूबरू होने का मौका मिला। हां, तब भी वे टाइपराइटर पर कंपोज मेटर ही भेजा करते थे। बताते हैं कि दिनमान में सबसे पहले टाइपराइटर पर काम करने वाले पत्रकारों में त्रिलोकदीप जी अकेले व्यक्ति थे। जो अब तक भी बदस्तूर जारी है।

कभी-कभी मन में सवाल जरूर आया कि टाइपिंग में अगुवाई करने वाले त्रिलोकदीप

जी कंप्यूटर से सृजन की धारा में क्यों शिफ्ट नहीं हुए। खैर, कई बार हम लगाव-जुड़ाव के चलते समकालीन बदलाव को नजरअंदाज कर जाते हैं। यह एक तकनीक से बढ़कर भावानात्मक जुड़ाव का मामला ज्यादा होता है।

यह सुखद ही रहा कि इस कालम के जरिये दीप जी सारिका के दिनों की स्वर्णिम पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं से नई पीढ़ी के पत्रकारों और पाठकों को अवगत करा रहे थे। इसमें उनकी धीर-गंभीर प्रकृति के यात्रा वृत्तांत भी शामिल थे।

जिनको पढ़ते हुए न केवल हमारे ज्ञान में वृद्धि होती थी बल्कि ऐसा लगता था कि हम भी उस परिवेश में विद्यमान हैं। निस्संदेह उस पीढ़ी के पत्रकार अच्छे लेखक, अच्छे साहित्यकार होने के साथ ही अच्छे इंसान भी थे।

उनके संवेदनशील और प्रेरक व्यवहार से नई पीढ़ी के सृजनकारों को बहुत कुछ सीखने को मिला। त्रिलोकदीप जी ने बहुत ही सरल-सहज भाषा में बहुत ही साफगोई के साथ उस कालखंड का जीवंत चित्रण किया। मैंने कभी महसूस नहीं किया कि उनके लेखन में किसी के प्रति दुराग्रह नजर आया हो। खासकर, उनकी विदेश यात्राओं का रोचक वर्णन ऐसा लगता था कि जैसे हम उनके साथ-साथ यात्रा के साक्षी हों।

दरअसल, त्रिलोकदीप जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उनके व्यवहार में सदैव सरलता-सहजता महसूस होती है। किसी किस्म का वैसा दंभ नजर नहीं आता, जैसा कि नई पीढ़ी के संपादकों में नजर आता है। कहते हैं कि गहरी नदी चुपचाप बहती है और बरसाती नाला शोर करता है। ठीक उसी तरह गौरवशाली पत्रकारिता के दौर के साक्षी रहे त्रिलोकदीप जी में किसी तरह का कृत्रिम व्यवहार नजर नहीं आता। लगभग दो वर्ष पूर्व वे एक पारिवारिक कार्यक्रम में शामिल होने चंडीगढ़ आये तो उनके साथ गुणवत्ता का समय कब बीता पता ही नहीं चला। कई पुराने अनुभव साझे किये। लेकिन वरिष्ठ पत्रकार होने का दंभ कभी नहीं दिखा।

जब वे पिछले साल अपनी एक पुस्तक की तैयारी कर रहे थे तो एक दिन उनका फोन आया कि अरुण मेरी नई किताब के लिये कोई अच्छा शीर्षक सुझाओ, तुम्हारे शीर्षक बहुत अच्छे होते हैं।

मेरे लिये तो यह सम्मान की ही बात थी कि इतना वरिष्ठ पत्रकार मुझे यह अवसर दे रहा है। वे चाहते तो खुद भी पुस्तक का शीर्षक दे सकते थे। हालिया पुस्तक के समय भी उन्होंने मुझे फिर से यह मौका दिया।

विशेष बात यह है कि त्रिलोकदीप जी की सक्रियता आज भी सोशल मीडिया माध्यमों में लगातार नजर आती है। अपने कुछ प्रिय मित्रों के साथ दिल्ली के प्रेस क्लब आदि स्थानों में वे हर चीज को उत्साह और रुचि के साथ करते हुए नजर आते हैं।

खान-पान के शौक के साथ ही जिंदगी का हर लुत्फ सहजता के साथ उठाते नजर आते हैं। निस्संदेह, उनके जीने का सहजता का ढंग उन्हें स्वस्थ जीवन की इनायत बख्शता है। वे लगातार पूरी ऊर्जा के साथ सक्रियता बनाये रखते हैं। यह एक हकीकत है कि जब हम सहजता व सरलता के साथ जीवन जीते हैं तो सकारात्मकता के प्रवाह के चलते हम शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि वे उम्र के नवें दशक में भी सोशल मीडिया में खासे सक्रिय नजर आते हैं।

कभी अपनी पीढ़ी के पत्रकारों व साहित्यकारों से जुड़ी रोचक व ज्ञानवर्धक संस्मरणों लेकर आते हैं तो कभी लुभावनी विदेश यात्राओं पर लेकर चलते हैं।

उस कालखंड के महत्वपूर्ण घटनाक्रमों को पूरे सचेतन होकर नई पीढ़ी के पाठकों तक पहुंचते हैं। यूं तो एक पत्रकार और साहित्यकार के रूप में त्रिलोकदीप जी के योगदान से पाठक परिचित हैं, लेकिन संपर्क भाषा भारती के माध्यम से यह विशेषांक निश्चय ही हजारों पाठकों को त्रिलोकदीप जी के बहुआयामी व्यक्तित्व से रूबरू होने का सुखद अवसर प्रदान करेगी।

(वरिष्ठ पत्रकार)

□□□

पत्रकारिता के प्रखर प्रेरणा-स्तंभ: त्रिलोक दीप

सुषमा गजापुरे'सुदिव'

त्रिलोकदीप पत्रकारिता में एक ऐसा प्रकाशमान नाम है जो संभवतः आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के अंतिम कुछ स्तंभों में उल्लेखित किए जाते हैं। पत्रकारिता में उनका नाम अत्यंत सम्मान से लिया जाता है। 'दिनमान'और'संडे मेल साप्ताहिक'जैसी हिन्दी पत्रकारिता का स्वर्णिम अध्याय रचनेवाली पत्रिकाओं से उनका लगभग 40 वर्ष का लंबा अनुभव रहा है। त्रिलोकदीप जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। वे न केवल प्रतिष्ठित पत्रकार है बल्कि वे एक बेहतरीन कथाकार और यात्रवृत्त लेखक और जाने-पहचाने संस्मरणीय लेखक के रूप में भी विख्यात है। दरअसल किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में बात करना और कुछ लिखना जिनसे हम अत्यंत आदर-सम्मान स्नेह रखते हो और जो हमारे लिए परिवार से बढ़ कर हो, तब उन पर कुछ लिखना अर्थात ही सूरज को प्रकाश दिखाने की तरह हो जाता है लेकिन फिर भी उन पर लिखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है तो यह अवसर मेरे लिए भी अनमोल है। स्वभाव से अत्यंत मृदु और सौम्य त्रिलोकदीप जी से जब भी बातें हुई हैं, मन उनके प्रति श्रद्धा से नत हो जाता है। उनका सरल स्वभाव ही उन्हें सबके साथ स्नेह-सूत्र से बाँध देता है।

त्रिलोकदीप जी एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जो अपने जीवन में सदैव ही आदर्शों के प्रतिमान स्थापित करते रहें और अपने परिचितों और जन-मानस के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते रहें। इस ऊंचाई पर पहुँच कर भी त्रिलोकदीप जी सदैव ही धरातल से जुड़े हुये है, यह उनका ही

बड़प्पन है। उम्र के इस पड़ाव पर पहुँच कर भी उनकी युवाओं की तरह स्फूर्ति और सक्रियता देखते ही बनती है और उनसे बात करना और उनसे उनकी यादें साझा करना मेरे लिए हमेशा ही एक नया रोचक अनुभव रहा है। त्रिलोकदीप जी अपनी धुन के पक्के एक ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने लोकसभा सचिवालय में हिन्दी-विभाग की अपनी सरकारी नौकरी छोड़ कर'दिनमान'पत्रिका में काम करने को अधिक महत्व दिया। सरकारी नौकरी को छोड़ कर पत्रकारिता के क्षेत्र को अधिक महत्व देने वाले ऐसे कोई विरले ही होते हैं। अपनी स्मृतियों में खोये त्रिलोकदीप जी बताते है कि वे बड़े भाग्यशाली है कि उन्हें अपनी पत्रकारिता के प्रारंभिक समय में ही अज्ञेय, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे साहित्यकारों के साथ काम करने का अवसर मिला। 'दिनमान'के चौबीस वर्षो की अनेक स्मृतियों से उनका गहरा अटूट संबंध है। वे शायद उन स्मृतियों को कभी भी स्वयं से अलग रख नहीं सकते क्योंकि वो समय उनके जीवन का स्वर्णकाल था जब वे भारत के कई महान नेताओं, प्रख्यात साहित्यकारों, विख्यात पत्रकारों, लेखकों और विशिष्टजनों से मिले और इतना ही नहीं इसी काल में उन्हें विश्व के कई देशों में जाने और वहाँ के लोगों से मिलने का सुअवसर भी मिला जिन्हें उन्होंने अपने संस्मरणों में अंकित किया है।

त्रिलोकदीप जी के जीवन में रावलपिंडी और रायपुर इन दोनों शहरों का सर्वाधिक महत्व रहा है, ये दोनों शहर उन्हें अत्यंत प्रिय है। उनसे उनका जुड़ाव उनकी बातों में सहसा झलक जाता है और यह स्वाभाविक भी है।

त्रिलोकदीप जी को यदि नजदीक से जानना हो तो हमें सबसे पहले उनके बचपन के अतीत के गलियारों से गुजरना होगा क्योंकि उनके जीवन की अग्रिम भूमिका यही से बननी आरंभ हो चुकी थी, पत्रकारिता और लेखन के बीज यहीं से अंकुरित होने लगे थे। अपने बचपन की बातें करते हुये वो अक्सर कहीं खो जाते हैं।

त्रिलोकदीप जी का जन्म 11 अगस्त, वर्ष

1935, ज़िला गुजरात की तहसील फालिया में हुआ, जो अब पाकिस्तान में स्थित है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा रावलपिंडी के डेनिज स्कूल में हुई जो उस समय का बेहतरीन स्कूल माना जाता था।

कहते हैं इंसान चाहे जितना बड़ा हो जाएँ, उम्र में, पद-प्रतिष्ठा में, संपन्नता में लेकिन जब वह अपने बचपन की यादों में लौटता है तो वह अनायास ही बच्चा हो जाता है और उन्हें याद करते हुये अत्यंत भावुक हो जाता है। त्रिलोकदीप जी भी अपने बचपन की याद करते हुये कई बार भावुक हो जाते हैं। वे अपने स्कूल के दिनों को, अपने भाइयों को, उनके साथ गुजरे हुये पलों को, अपने स्कूल को, रावलपिंडी की गलियों को आज भी शिद्दत से याद करते हैं। उन यादों में टहलते में हुये वे बताते हैं कि-

मैं और मेरे भाई दोपहर को स्कूल की बिल्डिंग की मुड़ेर पर साथ बैठकर खाना खाते थे। मेरी बुआ करतार देवी बहुत अच्छा खाना बनाती थीं। मेरे फूफा जोधसिंह की मरीढ़ में बहुत बड़ी दुकान थी, जहाँ दुनिया भर का सामान मिलता था। उनका बहुत खूबसूरत घर था जो दुकान से ज़्यादा दूर नहीं था। मैं कभी-कभी बुआ के घर रुक जाया करता था। उनके हाथ की गुलाबी रंग की चाय मुझे बहुत अच्छी लगती थी। मेरी खातिर इसलिए भी होती थी क्योंकि मैं उनका अकेला भतीजा था। मुझे अपनी चारों बुआओं और चाचा परमानंद जी का भी खूब प्यार मिला।

यह कहते हुये उनका गला भर आता है। आगे वे बताते हैं कि -

लेकिन 1947 में सभी कुछ गड़बड़ा गया। पहले मार्च में दंगे हो गये जिसके कारण हम लोगों को करीब दो हफ्तों तक सेना के संरक्षण में कैंपों में रहना पड़ा। बाद में अमन होने पर भी लोगों के मन में धुक-धुकी लगी रहती थी। स्कूल खुल गये और हम दोनों भाई मिलते भी थे लेकिन स्थिति की गंभीरता से उस वक़्त वाकिफ नहीं थे। महात्मा गांधी जिस सभा में सभी लोगों से अमन रखने की अपील कर रहे थे, उसमें मैं भी उपस्थित था। उनके साथ एक लंबा-सा पठान भी था

जिसका नाम लोगों ने'खान अब्दुल गफ्फार खान'बताया था। उस वक़्त रावलपिंडी में जिस तरह से लोग डरे हुए थे उन्हें यकीन नहीं हो रहा था कि अब खून-खराबा रुकने वाला है। सौभाग्यवश जीवन में आगे चल कर मुझे खान अब्दुल गफ्फार खान से मिलने का अवसर भी मिला और मेरी उनसे चर्चा भी हुई।

इस बीच मेरे पिता अमरनाथ जी असहज महसूस करने लग गये थे, वह इसलिए भी कि उनके मुस्लिम पार्टनर ने उन्हें सलाह दी थी कि तुम अपने बेटे के बाल कटवा दो और मज़े से अपने भाई और बेटे के साथ यहीं हमारे साथ रहो। पिता जी को यह सुझाव अखर गया। हम लोगों ने विभाजन से पहले ही रावलपिंडी का अपना घर छोड़ने का यह सोच कर फैसला कर लिया कि हालात सामान्य होने पर हम लोग लौट आयेंगे पर ऐसा हो न सका। मेरे चाचा पोस्ट ऑफ़िस में काम करते थे उन्होंने अपना ट्रांसफर बंबई (वर्तमान मुंबई) करा लिया। अपने रिश्तेदारों को भी हमने रावलपिंडी छोड़ने की खबर दे दी, अपनी मरीढ़ वाली बुआ को भी।

5 अगस्त, 1947 को हम रावलपिंडी छोड़ लाहौर आये। लाहौर से दूसरी ट्रेन लेकर लखनऊ पहुंचे और वहाँ से छोटी लाइन की गाड़ी शायद त्रिहुद एक्सप्रेस लेकर 7 अगस्त को टिनिच (जिसे आमा बाज़ार भी कहते हैं) पहुंच गये। वहाँ के कुछ लोगों से हमारे पिताजी का परिचय पहचान थी। हमारे वहाँ पहुंचने के कुछ दिनों के बाद बड़ी बुआ भायांवाली, फूफा प्यारामल और उनके बच्चे तथा मेरे दो मामा प्रेमसिंह और संतोखसिंह सलूजा भी पहुंच गये, तीसरा प्रतापसिंह अपने गांव कैलू में फंस गया अपने माता-पिता के साथ। मेरे नानी-नाना का तो कत्ल हो गया लेकिन मामा बच गया जो किसी काफिले में शामिल होकर भारत सुरक्षित पहुंच गया। वह भी हमारे साथ टिनिच में ही रहने लगा। हम और हमारी बुआ एक मकान में रहे जबकि मेरे मामा दूसरे मकान में एक साथ। टिनिच बस्ती ज़िले में है और वह हमारा अस्थायी ठौर था। टिनिच में सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि मुझे हिंदी लिखनी और पढ़नी आ गयी जो मैं पहले बिल्कुल नहीं जानता था। रावलपिंडी में उर्दू मीडियम था और साथ में अंग्रेज़ी भी लेकिन नुकसान कहीं ज़्यादा हो गया। रायपुर में मेरी बड़ी मौसी द्रौपदी रहती थी उन्होंने हमें अपने यहां आने की सलाह दी। लिहाजा हम लोगों ने जब टिनिच छोड़ने का मन बना लिया तो हमारे फूफा और बड़े मामा भी तैयार हो गये जबकि छोटे मामा दिल्ली अपनी छोटी बहन के यहां चले गये। इस तरह से हम लोग अप्रैल, 1949 को रायपुर आ गये।

इस तरह त्रिलोकदीप जी का रायपुर शहर में आगमन हुआ।

रायपुर में उन्हें'माधवराव सप्रे स्कूल'में छठी

कक्षा में दाखिला मिला। 1947 में रावलपिंडी में भी वे छठी क्लास में ही पढ़ रहे थे लेकिन पढ़ना जरूरी था इसलिए पुनः छठी में ही प्रवेश लिया। हिन्दी उन्होंने रायपुर आ कर ही अच्छी से सीखी थी क्योंकि इससे पहले वे उर्दू जानते थे, प्रारंभ में थोड़ी मुश्किल हुई लेकिन कुशाग्र बुद्धि के त्रिलोकदीप जी जल्दी ही नवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दी में पारंगत हो गये। वे इसका श्रेय अपने गुरुजनों को देते नहीं थकते हैं, जिसमें स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी जिन्होंने उन्हें गढ़ा और इस योग्य बनाया कि वे पूरे आत्मविश्वास के साथ लिख सकें। उन्होंने ही बालक त्रिलोकदीप का अज्ञेय, प्रेमचंद, शरतचंद्र, बंकिमचन्द्र, यशपाल, धर्मवीर भारती आदि साहित्यकारों से परिचय करवाया और उनकी पुस्तकें लाकर पढ़ने को दीं। उसी समय उनकी अज्ञेय, यशपाल और धर्मवीर भारती से मिलने की इच्छा बलवती हो गयी थी। उनकी इच्छा इतनी बलवती थी कि समय और भाग्य ने भी उनका साथ दिया और उन्हें ऐसी दिशा दी कि न केवल अज्ञेय जी से भेंट ही हुई, उनका लंबा सानिध्य प्राप्त हुआ बल्कि उनसे पत्रकारिता के अनेक महत्वपूर्ण गुर भी सीखने के लिए मिले। धर्मवीर भारती जी से भी उन्हें अपार स्नेह प्राप्त हुआ और स्नेहल सानिध्य भी। इस तरह से वे साहित्यिक पुरोधाओं के साहचर्य में पोषित होने लगे।

त्रिलोकदीप जी की'जुनेजा'से'दीप'बनने की यात्रा भी बेहद रोचक है। त्रिलोकदीप जी का मूल सरनेम'जुनेजा'था। जो केवल स्कूल और कॉलेज के प्रमाणपत्रों तक सीमित रहा। वे बताते हैं कि रायपुर में किसी के प्रति आकर्षण ने उन्हें'जुनेजा'से'दीप'बनाया।

रायपुर में ही उनकी आगे की शिक्षा पूरी हुई। कैंप कॉलेज दिल्ली, से उन्होंने राजनीतिशास्त्र में बी.ए.(आनर्स) किया। इस बीच उन्होंने हिन्दी टायपिंग भी सीख ली थी और सच कहा जाएँ तो यहीं से उनके भीतर लेखन प्रस्फुटित हुआ। इस तरह युवा और जोश से भरे त्रिलोकदीप जी जब लोकसभा सचिवालय में नौकरी के लिए दिल्ली आए तो यह हिन्दी टायपिंग उनके बड़े काम आई क्योंकि उस समय हिन्दी के टाइपिस्ट के भारी कमी हुआ करती थी, इस तरह लोकसभा सचिवालय में वे नियुक्त हुए। लोकसभा सचिवालय में उन्होंने लगभग 10 वर्ष तक कार्य किया और यहाँ से उनके जीवन की दूसरी पारी प्रारंभ होती है।

सब कुछ सामान्य होने के पश्चात भी एक नयी दिशा, एक नया क्षेत्र और एक नया पटल उनकी प्रतीक्षा कर रहा था और वह क्षेत्र था पत्रकारिता।

वे उन दिनों के बारे में याद करते हुये बताते हैं कि- जब मैंने लोकसभा सचिवालय की नौकरी छोड़'दिनमान'से जुड़ने का निर्णय लिया तो कुछ लोग मुझे डराने लगे। वहाँ बहुत दिग्गज हैं, तड़ीबाज हैं, धाँसू हैं वहाँ के माहौल में तुम अनफिट हो। बिन मांगे जबरन सलाह देने वाले ऐसे लोगों से पिंड छुड़ा कर मैं पहली जनवरी, 1966 में दिनमान से जुड़ गया। मुझे वहां का वातावरण बहुत ही सुखद और सुकून भरा लगा। अज्ञेय जी ने सभी से मेरा परिचय कराया – मनोहर श्याम जोशी, जितेन्द्र गुप्त, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा, श्यामलाल शर्मा, योगराज थानी, रमेश वर्मा, जवाहरलाल कौल, श्रीमती शुक्ला रुद्र आदि। सर्वेश्वर जी ने मुझे अपने पास बिठाते हुए कहा, आप निश्चिंत होकर काम करें, भाई यानी अज्ञेय जी आपको लाये हैं, उनका सही पात्र आपको सिध्द करना होगा। सर्वेश्वर जी के मार्गदर्शन में काम शुरू कर दिया। जो कुछ लिखने को कहते लिख कर उन्हें या अज्ञेय जी को सौंप देता। हम लोग उन दिनों नयी बिल्डिंग यानी 7, बहादुर शाह जफर मार्ग में बैठा करते थे। हफ्ते में एक दिन के लिए मैं सर्वेश्वर जी के साथ 10, दरियागंज स्थित प्रेस जाता, उनके साथ गैलिया प्रूफ पढ़ता। आज जैसी कंप्यूटर व्यवस्था थी नहीं, हैण्ड कोम्पोज़ींग का ज़माना था। कुछ महीनों में उन्होँने मुझे दक्ष कर दिया था। सर्वेश्वर जी में एक सिफत और थी। प्रूफ पढ़ते-पढ़ते कब वह किसी और दुनिया में पहुंच जायें, कह पाना मुश्किल है। एक बार मैं तो प्रूफ पढ़ने में तल्लीन था और सर्वेश्वर जी प्रूफ वाली गैली के खाली स्थान पर कविता लिखे जा रहे थे। वह अपने आसपास के माहौल से बेखबर थे। कविता समाप्त करने के बाद बोले, काश! भाई होते। अज्ञेय जी तब दिनमान छोड़ चुके थे"

इस तरह त्रिलोकदीप जी के संस्मरण बेहद जीवित और मनोरंजक भी हुआ करते थे और कभी-कभी भावुक भी कर जाते हैं।

1 जनवरी, 1966 से 31 अक्टूबर, 1989 तक वे प्रतिष्ठित साप्ताहिक'दिनमान'के संपादकीय विभाग में वे कार्यरत रहें। त्रिलोकदीप जी ने'दिनमान'और'संडे मेल'में कार्यरत रहते हुए देश-विदेश की अनेक यात्राएं की हैं। जिन पर उनके संस्मरण अत्यंत

रुचिपूर्ण, सहज और रोमांचकारी होते हैं। उसमें उनकी'देश और निवासी'श्रृंखला के लिए कनाडा और लद्दाख पर पुस्तकें, हंगरी और पाकिस्तान पर यात्र-वृत्तांत अत्यंत उल्लेखनीय है। इनमें से एक आलेख मैंने भी अपने पत्रिका'साहित्य-सुषमा'में प्रकाशित किया हुआ है जिसके स्क्रीन शॉट्स मैंने नीचे संलग्न किए हैं।

उस समय'दिनमान'के साथ-साथ 'सारिका', 'पराग', 'वामा', यूथ टाइम्स'आदि पत्रिकायें भी प्रकाशित हुआ करती थी और ऐसे में कन्हैयालाल नंदन जी अत्यंत क्रियाशील हुआ करते थे। तब रघुवीर सहाय'दिनमान'के संपादक थे। त्रिलोकदीप जी अज्ञेय जी के सानिध्य में बहुत समय तक रहे और इसीलिए उनका उनके जीवन में अत्याधिक प्रभाव आपको उनके व्यक्तित्व, लेखन और उनकी बातों में स्पष्ट दिखाई देगा। त्रिलोकदीप जी के व्यक्तित्व में जो सकारात्मकता और जीवटता दिखाई देती है उसमें उस समय के पत्रकारों, साहित्यकारों, अधिकारियों, पत्रकारों और राजनेताओं के बीच परस्पर विश्वास और अपनेपन का भी अंश दिखाई देता है। वे जिस तरह के माहौल में रहें उससे उन्होंने बहुत कुछ लिया और बहुत कुछ दिया भी। दुःख की बात है कि वैसा माहौल अब न पत्रकारिता में हैं, न साहित्य में। यह बात वे कई बार अपनी चर्चा के दौरान कहते हैं। त्रिलोक दीप के 87वें जन्मदिन पर 40 वर्षों की उनकी पत्रकारिता-यात्रा के संस्मरणों की पुस्तक'त्रिलोक दीप का सफर'का लोकार्पण किया गया। अभिषेक कश्यप के संपादन में इस पुस्तक में लगभग 65 लेखकों और पत्रकारों ने बड़े ही अलग अंदाज में अनेक संस्मरणों का उल्लेख किया हैं जो नए एवं युवा पत्रकारों के लिए एक आदर्श उदाहरण है, प्रेरणा है।

इसी तरह अभिषेक कश्यप द्वारा संपादित पुस्तक'संस्मरणनामा'भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक में त्रिलोकदीप जी के पत्रकारिता के लंबे अनुभवों को संस्मरण के रूप में उल्लेखित किया गया है। जिसमें मुख्यतः पत्रकारिता, साहित्य, राजनीति, नौकरशाही के भीतर के दांव-पेंच जिन्हें उन्होंने करीब से देखा है और सिनेमा-जगत से जुड़ी हुई अनेक प्रसिद्ध हस्तियों के साथ उनके अनुभव समाविष्ट है। इन सभी संस्मरणों में त्रिलोकदीप जी के अनुभव ऐसे उभर कर आयें हैं जिन्हें पढ़ते हुये पाठक भी उनके अनुभवों से सहजता से बतिया लेते हैं और सरलता से संवाद स्थापित कर लेता है। यह संस्मरण उन बीते हुये दिनों का दस्तावेज़ है जो त्रिलोकदीप जी ने जिया और भोगा भी। हमारे यू-ट्यूब चैनल पर हमने त्रिलोकदीप जी से साक्षात्कार के 6 एपिसोड्स रिकॉर्ड किए हैं, जिनमें चर्चा के दौरान में वे कई बार भावुक हुये और कई बार बात करते-करते वे अतीत में खो भी जाते थे और कई बार उन्हें भावुक होते हुये भी हमने देखा। यह सभी 6 एपिसोड्स उन्हें जानने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होंगे, ऐसा मुझे लगता है क्योंकि उनके मुँह से उनके जीवन के संस्मरणों को सुनना एक अलग ही अनुभव होगा।

उनको जानना हो तो आप उनके यह एपिसोड्स अवश्य देख सकते हैं। इनकी लिंक भी मैं नीचे दे रही हूँ।

https://www.youtube.com/watch?v=J8RbrnKucCQ&t=14s

त्रिलोकदीप जी साहित्य-जगत और पत्रकारिता-जगत के एक प्रकाश-स्तंभ हैं, जिनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं, ढेर-सारी प्रेरणा ले सकते हैं। उन्हें कई महत्वपूर्ण पुरस्कार भी मिले हैं। उम्र के इस पड़ाव पर आ कर भी आज भी उनका लेखन, उनकी जीवटता और उनकी सक्रियता को प्रणाम करने का मन करता है। उनसे बतियाते हुये मैं भी कई बार उनके जीवन-यात्रा के अनेक पड़ावों पर और उनके अतीत के गलियारों में सहसा ठिठक जाती हूँ और जानने का प्रयास करती हूँ कि त्रिलोकदीप जी जैसे इंसान जिस तरह अपने जीवन-यात्रा में इतने उतार-चढ़ाव के बाद भी उन्नति के ऊंचे शिखर पर पहुँचे हैं, वह वास्तव में उल्लेखनीय और अतुलनीय है। आशा करती हूँ कि वे आने वाले समय में भी इसी सक्रियता के साथ साहित्य-जगत और पत्रकारिता- जगत को अपनी आभा से आलोकित करते रहेंगे।

बेमिसाल दीप

डॉ अमिताभ शुक्ल

80 के दशक में देश की एक लब्ध प्रतिष्ठित पत्रिका "दिनमान" में विभिन्न विषयों के जिन लेखकों को हम पढ़ा करते थे, उनके व्यक्तित्व के विषय में सोचा करते थे और उन्हें देखने, उनसे मिलने और बात करने का विचार करते थे, अब इतने दशकों बाद ऐसा कोई विचार / कल्पना यथार्थ में परिणित होगा, यह कल्पना भी कठिन थी . यद्धपि, उनसे परिचय दीर्घ काल से नहीं था, लेकिन उनकी अद्भुत मिलंनसारिता, सद्भाव और मैत्री पूर्ण व्यवहार से अभिभूत हो जाना स्वाभाविक होता है. सन 60 के दशक में उन्होंने पत्रकारिता का कैरियर प्रारंभ किया था. अदभुत स्मरण और लेखन शैली के धनी दीप जी से एक पत्रिका के गांधी शास्त्री विशेषांक में लेख लिखने का अनुरोध मैने किया था. विस्मित कर दिया था उन्होंने जब आदरणीय शास्त्री जी पर एक लंबा लेख उन्होंने उपलब्ध कराया था . इस लेख में शास्त्री जी से उनकी व्यक्तिगत भेंट से लेकर भारत, पाकिस्तान युद्ध, उसमें शास्त्री जी की भूमिका पर संस्मढातमक विवरण दिए गए थे. दीप जी सामरिक मामलों के विशेषज्ञ हैं अतः उनकी अनुभव अत्यंत स्पष्ट और लेखन के अनूठे अंदाज के कारण रोचक होते हैं। उनके साथ बिताए समय की एक मधुर स्मृति बिलकुल ताजा है. विगत वर्ष मेरे दिल्ली आने की सूचना होते ही अग्रिम आमंत्रण द्वारा उन्होंने मुझे प्रेस क्लब में भोजन पर आमंत्रित कर लिया था. मैं ही अत्यधिक संकोच में था लेकिन, जब उनसे भेंट हुई तब ऐसा लगा कि, मेरे ही किसी अभिवावक, परिवार के वरिष्ठ सदस्य से भेंट हो रही है.

इस आयु में भी (87 वर्ष) न केवल सक्रिय रूप से वह लिख रहे हैं, वरन, समस्त दैनिक क्रियाओं और सामाजिक व्यवहारों का दायित्व निभाते हैं कि, विस्मय के अतिरिक्त आल्हाद प्राप्त होता हे. आपके निरंतर सक्रिय रहते हुए दुलार और अपनापन प्राप्त होते रहने को परम सौभाग्य समझना स्वाभाविक ही है. मेरी कृतज्ञता और हार्दिक प्रणाम उनकी शख़्शियत को जो बहुत ही बिरलों को प्राप्त होती है.

त्रिलोक दीप- आलोकित करते पत्रकारिता को

विवेक शुक्ला

त्रिलोक दीप को छात्र जीवन से ही दिनमान में पढ़ना शुरू कर दिया था। वे मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय विषयों पर लिखा करते थे। उनकी हरेक रिपोर्ट मुझे ज्ञानवर्धक लगती है। उन्हें पढ़कर एक दिशा और दृष्टि मिल जाती थी। उन्हें पहली बार देखने का सौभाग्य मिला 1984 में। मैं दिनमान के दफ्तर में गया था। दिनमान का दफ्तर दरियागंज में हुआ करता था। दिनमान के उस बड़े से संपादकीय हॉल में सिर्फ एक ही धीर-गंभीर सरदार जी बैठे हुए नजर आए। उनकी टेबल के आगे एक टाइप राइटर रखा हुआ था। बाकी किसी के पास टाइप राइटर नहीं था। वहां पर दिनमान में तब काम कर रहे जसविंदर या संतोष तिवारी ने बताया था कि ये त्रिलोक दीप जी हैं। मैं तब उनसे मिलने का साहस नहीं जुटा पाया था। बस, अपने नायक के दूर के दर्शन करके निकल लिया था। हालांकि आगे चलकर उनसे मित्रता हुई जब मुझे

मीडिया की दुनिया में आने का मौका मिला। इस दौरान उनको पढ़ना लगातार जारी रहा।

त्रिलोक दीप पत्रकारिता को गुजरे साठ वर्षों से भी अधिक समय से आलोकित कर रहे हैं। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर लिखना सच में चुनौतीपूर्ण है। मेरी उम्र से अधिक समय से तो वे पत्रकारिता में हैं। इतने सच्चे और सतत लिख्खाड़ी अब आसानी से नहीं मिलते। उनकी कूटनीति, राजनीति, समाज, अंतरराष्ट्रीय विषयों पर लगातार पैनी नजर रहती है। उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू से लेकर नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल के भारत को अखबारनवीस की नजरों से देखा और उस पर बेबाकी से कलम चलाई। वे दिनमान और फिर संडे मेल जैसे प्रतिष्ठित प्रकाशनों में जिम्मेदार पदों पर रहे। उन्होंने दर्जनों नौजवान पत्रकारों को तराशा और गढ़ा। ना जाने कितने युवा पत्रकारों को नौकरी दी या दिलवाई। लेकिन, उन्होंने कभी दावे नहीं किए कि फलां-फलां पत्रकार उनका शिष्य है। हिंदी पत्रकारिता में मठाधीश पत्रकारों की भरमार है। ये दावे करते नहीं थकते कि उन्होंने किस-किस को

नौकरी दिलवाई।

त्रिलोक दीप बोलते कम और सुनते अधिक है। मैंने उनके मुंहे से कभी किसी की निंदा करते नहीं सुना। व हरेक के लिए कुछ अच्छा ही बोल रहे होते हैं। वे वैकल्पिक सोच और विचारों का सम्मान करने वाले शख्स हैं। त्रिलोक दीप उन लोगों में नहीं हैं जो अलग राय रखने वालों से दूरी बना लेते हैं। वे मन और कर्म से लोकतांत्रिक हैं। उन्होंने सैकड़ों नौजवानों को पत्रकारिता की बारीकियों को बताया। वे त्रिलोक दीप को अपना आदर्श और संरक्षक मानते हैं।

त्रिलोक दीप के लिए कहा जा सकता है कि वे मौजूदा हिन्दी पत्रकारिता के शलाका पुरुष हैं। उन्होंने एक दर्जन से अधिक लोकसभा चुनावों से लेकर अमेरिकी राष्ट्रपति पद के चुनाव को कवर किया। विधानसभा चुनावों की तो गिनती करना कठिन है। वे पाकिस्तान मामलों के गहन जानकार हैं। अनेक बार पाकिस्तान की यात्रा कर चुके हैं। उनका जन्म स्थान रावलपिंडी है। उनसे मेरा आत्मीय संबंध इसलिए भी बनता है क्योंकि मेरा परिवार भी देश के विभाजन के बाद रावलपिंडी से दिल्ली आया था। वे और मेरे पापा जी रावलपिंडी के डेनिस हाई स्कूल में पढ़े। उन्हें हमेशा इस बात को लेकर भी हैरत होती है कि मैं शुक्ला सरनेम वाला इंसान धारा प्रवाह पंजाबी कैसे बोल लेता हूं। मेरा परिवार उत्तर प्रदेश से पंजाब में जाकर बसा था। उनका परिवार देश के बंटवारे के बाद कुछ समय उत्तर प्रदेश में रहा।

त्रिलोक दीप हिन्दी पत्रकारिता में स्वैच्छिक रूप से आए। हालांकि उनकी मातृभाषा पंजाबी है। हिन्दी से उनका साक्षात्कार रायपुर के प्रवास के दौरान हुआ। देश के विभाजन के बाद उनका परिवार रावलपिंडी से रायपुर में जाकर बस गया था बारास्ता उत्तर प्रदेश के। वहां पर पढ़ते हुए ही उन्होंने स्थानीय अखबारों के लिए लिखना आरंभ कर दिया था। एक तरह से कह सकते हैं कि उनकी पत्रकारिता की नींव रायपुर में 1950 के दशक के अंत में पड़ गई थी। वे डेस्क पर बैठने में कम यकीन करते हैं। उन्हें घटनास्थल पर जाकर लिखना रास आता है। उनकी खबरों, रिपोर्टों, इंटरव्यू वगैरह को पढ़कर पाठक को कुछ अनेक सूचनाएं मिलती हैं। ये ही तो पत्रकारिता है। वे अपने पाठकों को अपनी चमत्कारी लेखनी से तुरंत बांध लेते हैं। वे बोझिल और उबाऊ लेखक नहीं हैं। उनका गद्ध (प्रोज) अद्भुत होता है। मैं कुलदीप नैयर, त्रिलोकदीप और राजीव शुक्ला (अब वे सियासत के संसार में हैं) को एक ही श्रेणी में रखता हूं। ये खास इसलिए बनते हैं क्योंकि ये सब घुमक्कड़ रहे हैं। ये देश-विदेश की बार-बार यात्राएं करते हैं, आम और खास इंसानों से मिलते हैं। जो पत्रकार घूमता या जनता के बीच जाता नहीं, उसे पत्रकार कैसे कहें। श्रेष्ठ पत्रकार के बायो-डाटा में यह अवश्य लिखा होना चाहिए कि उसने अनेक देशों, प्रदेशों, शहरों, गांवों की खाक छानी। त्रिलोक दीप जी अमेरिका, रूस, पोलैंड, ब्रिटेन, पाकिस्तान समेत अनेक देशों में बार-बार जाते रहे। आजकल वे उन यात्राओं के वृत्तांत फेसबुक पर भी शेयर हैं तो पाठक उन्हें बड़े ही चाव से पढ़ते हैं। संस्मरण कितना भी विस्तृत हो जाए उसे रोचक और ज्ञानवर्धक बनाए रखने की कला उन्हें खूब आती है। मजा आ जाता है उन्हें पढ़कर।

दिनमान ने त्रिलोकदीप को अखिल भारतीय पहचान दिलवाई थी। यह हिन्दी की एक प्रमुख एवं पहली साप्ताहिक समाचार पत्रिका

थी जिसे सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन'अज्ञेय'ने आरंभ किया। इस पत्रिका ने हिन्दी को कई प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी एवं पत्रकार ही नहीं दिए बल्कि हिन्दी प्रदेश में एक विचारधारात्मक ऊर्जा का भी संचार किया। इधर अज्ञेय ही उनको लेकर आए थे। दिनमान में नौकरी करने के लिए त्रिलोक दीप जी ने सरकरी नौकरी को छोड़ दिया था। वे दिनमान ज्वाइन करने से पहले राज्यसभा में अधिकारी थे। दिनमान ने तो त्रिलोक दीप की जीवन की धारा को ही बदल दिया। इधर उन्हें अज्ञेय, मनोहर श्याम जोशी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, प्रयाग शुक्ल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों के साथ काम करने का अवसर मिला। इससे उनकी शख्सियत का विस्तार हुआ। उन्हें एक सरकारी दफ्तर के बंद और घुटनभरे माहौल से नया आकाश मिला छूने के लिए। यहां पर रहते हुए उन्होंने ज्ञानी जैल सिंह से लेकर अटल बिहारी वाजपेयी और बलराम जाखड़ से लेकर फणीशवरनाथ रेणु और पीलू मोदी वगैरह से मुलाकातें कीं। इन सब पर लिखा। पर लिखते हुए कभी पत्रकारिता के मूल्यों से समझौता नहीं किया। तब ये नहीं देखा कि ये हस्तियां इनकी परिचित हैं या करीबी है। जो कहना था उसे कहा।

खान अब्दुल गफ्फार खान से मिलने और इंटरव्यू करने का मौका मिला। उस इंटरव्यू की बारे में वे एक बार बता रहे थे किजब उन्होंने सरहदी गांधी को बताया कि उनका परिवार रावलपिंडी से आया है तो वह कुछ भावुक होकर आशीर्वाद वाले दोनों हाथ ऊपर उठा कर बोले, 'ठीक हैं न'। खान अब्दुल गफ्फार खान 1969 में गांधी जी के जन्म सदी समारोह में भाग लेने के लिए भारत आए थे। त्रिलोक दीप ने 1980 और 1990 के दशकों में जलते पंजाब को बार-बार कवर किया। श्रीमती इंदिरा गांधी की 1984 में हत्या के बाद दिल्ली में भयानक दंगे भड़के। वे तब भी सड़कों पर उतर कर खबरें संकलित कर रहे थे। कहां मिलता हैं त्रिलोक दीप जैसे बेखौफ और सच के साथ खड़े होने वाले पत्रकार।

त्रिलोक दीप प्रयोग धर्मी हैं। भारत के पहले साप्ताहिक हिन्दी अखबार संडे मेल उनकी सोच और विजेन का नतीजा था। संडे मेल में उन्होंने अनेक उत्साही पत्रकारों को अपनी प्रतिभा को दिखाने के भरपूर अवसर दिए। संडे मेल ने भारतीय पत्रकारिता में नए मानक स्थापित किए थे। हिन्दी के पाठक को हर रविवार को एक खबरिया अखबार मिलने लगा था। उसके लिए यह नया अनुभव था। उसमें एक्सक्लूसिव खबरों के साथ-साथ सामयिक विषयों पर विचारोतेजक लेख, फीचर, इंटरव्यू, यात्रा वृतांत, साहित्य आदि पढ़ने को मिलते थे। संडे मेल कंटेट और डिस्पले के स्तर एक विश्व स्तरीय अखबार था। ये त्रिलोक दीप जी का बेबी था।

त्रिलोक दीप के साथ सत्संग करने का मतलब है कि आप किसी विद्वान की पाठशाला में बैठे हैं। वे ज्ञान का भंडार हैं। पर यह बात उन्हें विशेष नहीं बनाती। उन्हें बाकी से अलग करता है उनकी विनम्रता और सादगी। वे मौजूदा हिन्दी पत्रकारिता के सबसे आदरणीय नामों में से एक हैं। उन्होंने अपने पेशे के साथियों का जो सम्मान हासिल किया है वैसे विरलों को ही नसीब होता है।

अनजान को भी अपना बना लेने वाले त्रिलोकदीप

शंभूनाथ शुक्ल

टाइम्स समूह के साप्ताहिक'दिनमान'के संपादक जब सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन'अज्ञेय'थे, तब से वह कानपुर में हमारे घर आ रहा था। जब पढ़ने लायक़ समझ हुई तो दिनमान और धर्मयुग व साप्ताहिक हिंदुस्तान ही हाथ लगे, या सरिता और नवनीत हिंदी डायजेस्ट। किंतु दिनमान ही सदैव अपनी ओर खींचता था। एक ऐसा साप्ताहिक, जिसमें सब कुछ था। राजनीति, अर्थनीति, विश्वनीति, यात्रा वृत्तांत और साहित्य भी। मुझे तो दिनमान में पाठकों की चिट्ठियाँ पढ़ने में भी मन लगता था। दिनमान की जो संपादकीय टीम अज्ञेय जी ने बनायी थी, उसमें विविधता थी। किसी एक प्रांत या कोई एक बोली बोलने वाले लोग नहीं थे बल्कि इसमें समस्त हिंदुस्तान था। इसमें कथा, कहानी, उपन्यास लिखने वाले मनोहर श्याम जोशी थे तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे कवि भी। प्रयाग शुक्ल जैसे कला पारखी थे तो बंग भाषी शुक्ला रुद्र भी। त्रिलोक दीप यूँ तो पंजाबी भाषी सिख रहे लेकिन उनकी हिंदी में प्रवीणता और लेखन की प्रवाहमयी शैली अद्भुत थी। त्रिलोक जी शायद विदेश नीति देखते थे, इसलिए जब कभी वे पत्रकारीय दौरे पर विदेश जाते तो तो अपने साथ इतनी

यादों का ख़ज़ाना लाते, कि उस यात्रा को जीवंत कर देते। वे क्रिकेट पर भी लिख देते और अन्य विषयों पर भी। उनको पढ़ कर लगता कि त्रिलोक दीप दिनमान के आल राउंडर संवाददाता हैं।

जब मैंने दिनमान को नियमित पढ़ना शुरू किया, तब संपादक रघुवीर सहाय थे। दिनमान के कवर पेज को पलटते ही जिन नामों पर ध्यान जाता वे थे, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जो चर्चे और चरखे कालम स. द. स. के नाम से लिखते थे। अन्य नामों में श्यामलाल शर्मा, त्रिलोक दीप, शुक्ला रुद्र, जवाहरलाल कौल, माहेश्वर दयालु गंगवार, सुषमा पाराशर, योगराज थानी, बनवारी आदि सभी के लेख पढ़ता था। इसमें भी त्रिलोक दीप की रपटें ज़्यादा ध्यान खींचती। क्योंकि वे राजनीति, अर्थनीति, यात्रा आदि सारी विधाओं पर लिखते, यहाँ तक कि फ़िल्म और स्पोर्ट्स पर भी। मेरा मन किया करता, कि दिल्ली जाकर सबसे मिलूँ। एक बार 1980 में आया भी तब इसी समूह से निकलने वाली कहानी पत्रिका'सारिका'में अपने मित्र बलराम थे। मैंने उनसे कहा,

दिनमान के संपादकीय विभाग में ले चलो। वे तब स्वयं नए-नए सारिका में लगे थे, किससे मिलवाते! वे मुझे बनवारी के पास ले गए। बनवारी जी डेस्क पर अपने काम में तल्लीन थे। मैं उनसे बतियाता रहा, लेकिन यह कहने की हिम्मत न पड़ी, कि रघुवीर सहाय, स द स या त्रिलोक दीप से मिलवाओ।

इसके बाद 1983 में जब मैं इंडियन एक्सप्रेस समूह के शीघ्र प्रकाश्य दैनिक जनसत्ता में चयन के लिए रिटेन टेस्ट देने दिल्ली आया, तब तक दिनमान का ताप घट चुका था। रघुवीर सहाय की जगह कन्हैया लाल नंदन संपादक हो गए थे। टाइम्स प्रबंधन अब इतनी प्रखर ताप वाली पत्रिका का तेज सहने में अक्षम था। रघुवीर सहाय को नवभारत टाइम्स में सहायक संपादक बना दिया गया था, और उन्हें दस, दरिया गंज से शिफ़्ट कर बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग के टाइम्स हाउस में बिठा दिया गया था। 28 मई 1983 को जनसत्ता में मेरा रिटेन टेस्ट था। किंतु मैं एक दिन 11 अप पकड़ कर एक दिन पहले ही दिल्ली आ गया था। इलेवन आप सुबह पाँच बजे पुरानी दिल्ली स्टेशन पहुँचती थी। उतर कर प्लेटफ़ॉर्म पर ही नहाया-धोया और 9 बजे के क़रीब दिनमान के लिए चला, क्योंकि तब तक दिनमान में अपने कनपुरिया दोस्त संतोष तिवारी बतौर ट्रेनी लग गए थे। मैं पुरानी दिल्ली स्टेशन से टहलते हुए दस, दरियागंज आ गया। वहाँ पहुँच कर पता चला, कि संपादकीय विभाग के लोग 11 बजे आते हैं। लेकिन वहाँ सक्सेना नाम का जो चपरासी था, उसने खूब आवभगत की। चाय-समोसे मंगाए। संतोष से उसका अपनापा जो था। उसने बताया, कि उसे 1200 रुपए महीने मिलते हैं। मैं तब दैनिक जागरण में कन्फ़र्म उप संपादक था और मुझे 783 रुपए मिलते थे। ज़ाहिर है, दिल्ली अपनी तरफ़ खींच रही थी।

इसमें सिर्फ़ पैसा ही नहीं था, बल्कि यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों और दुनिया-जहान की समझ रखने वाले पत्रकारों से मिलने की उत्कंठा भी थी। जब तक दिल्ली नहीं आया था, सोचा करता था, कि दिल्ली जाकर क़ुतुब मीनार पर ज़रूर चढ़ूँगा। सुना करता था, कि इस मीनार के ऊपर से पूरी दिल्ली दिखती है और हवाई जहाज़ तो इतने क़रीब से गुजरते हैं, कि हाथ से पकड़ लो। लेकिन मेरे दिल्ली आने के डेढ़-दो साल पहले की घटना है। क़ुतुब मीनार देखने गए स्कूली बच्चे सबसे ऊपरी मंज़िल से लुढ़कने शुरू हुए और देखते ही देखते क़ुतुब मीनार की सीढ़ियों के पास बच्चों की लाशों के ढेर लग गए। कुल 42 बच्चे मारे थे। तब दिनमान ने कवर पेज पर हेडिंग लगाई थी- "घिसी हुई सीढ़ियों पर मौत" यह रिपोर्ट इतनी लाइव थी, कि कोई भी पाठक इसे पढ़ कर विह्वल हो जाए। यह था, शब्दों का जादू। तब टीवी मीडिया नहीं था, लेकिन तब शब्दों के ज़रिए घटना को लाइव कर देने का कौशल प्रिंट के पत्रकारों के पास था। इसके बाद दिनमान में फिर एक कवर स्टोरी छपी- अरे! सब लड़कियाँ कहाँ गईं! लड़कों के मुक़ाबले कम होती लड़कियों पर इतना शानदार कवरेज कभी नहीं हुआ। दिनमान की ये हेडिंग और इस तरह की कवरेज से मैंने सीखा, कि एक अच्छा पत्रकार वही है, जो शब्दों को अपने इशारे पर नचाए। और यह तब ही संभव हो सकता है, जब आप उसी भाषा में लिखें जिस भाषा में बोलते हैं। संयोग से दिल्ली आने पर जनसत्ता में प्रभाष जी का ज़ोर इसी तरह की भाषा पर था।

यह दिनमान का ही असर था, कि हर अख़बार या पत्रिका अपने को दिनमान का ताप छू लेने को आतुर था। पर रघुबीर

सहाय के बाद दिनमान अस्त हो चुका था। बाद के संपादक उसकी गरिमा नहीं बनाए रख सके। एक दिन सुना कि कन्हैया लाल नंदन और त्रिलोक दीप ने दिनमान छोड़ दिया है। वे लोग संडे मेल चले गए। तब मैं जनसत्ता में ही था इसलिए एक दिन ग्रेटर कैलाश में सावित्री सिनेमा के पीछे स्थित संडे मेल के ऑफ़िस गया। वहाँ कार्यकारी संपादक त्रिलोक दीप से मिल कर एक साध पूरी हुई। खूब बातचीत हुई। बाद में त्रिलोक जी उस साप्ताहिक के संपादक बने। संडे मेल समूह के अध्यक्ष संजय डालमिया त्रिलोक जी को बहुत मानते थे। वजह था, उनका लेखन और विश्व के चोटी के नेताओं से उनका सीधा संवाद। यह साहस दिनमान ही दे सकता था, कि उसका संवाददाता हर राष्ट्राध्यक्ष से रू-ब-रू बात करे। त्रिलोक जी की हिंदी और अंग्रेज़ी में ज़बरदस्त पकड़ थी, इसलिए उन्हें कभी कोई हिचकिचाहट नहीं थी। मज़े की बात कि दिनमान जॉयन करने के पूर्व वे लोकसभा प्रशासन में थे, इसलिए वे न सिर्फ़ लोकसभा की हर बहस व कार्यवाही को लाइव देखते, बल्कि सरकार और विपक्ष के हर नेता से भी उनका परिचय था।

आज भी त्रिलोक जी जीवंत पत्रकार हैं। आज 86-87 की उम्र में उनकी आवाज़ में वही खनक है, मिठास है। हर अनजान को अपना बना लेने की कला में भी वे माहिर हैं। दोस्तों के दोस्त हैं। अभी कुछ महीने पहले उन्हें हृदय रोग संबंधी कुछ परेशानी हुई थी, वर्ना वे हर बुधवार को प्रेस क्लब जाते और उनका एक कों रिज़र्ब था। जहां उनके मित्र जसलीन जस्सी और लोकप्रिय उपन्यासकार सुरेंद्र मोहन पाठक की तिकड़ी जमती। आज भी वे उसी तरह लिक्खाड़ भी हैं। जब भी मन होता है, वे अपनी स्मृतियों के सहारे लेख लिख देते हैं। उनके शब्द इतने जीवंत होते हैं, कि लगता है, कि हम भी उनके सहारे उस स्थान पर मौजूद हैं।

उनके जन्मदिन पर मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ। और प्रभु से कामना है कि त्रिलोक जी की कलम यूँ ही सदाबहार बनी रहे।

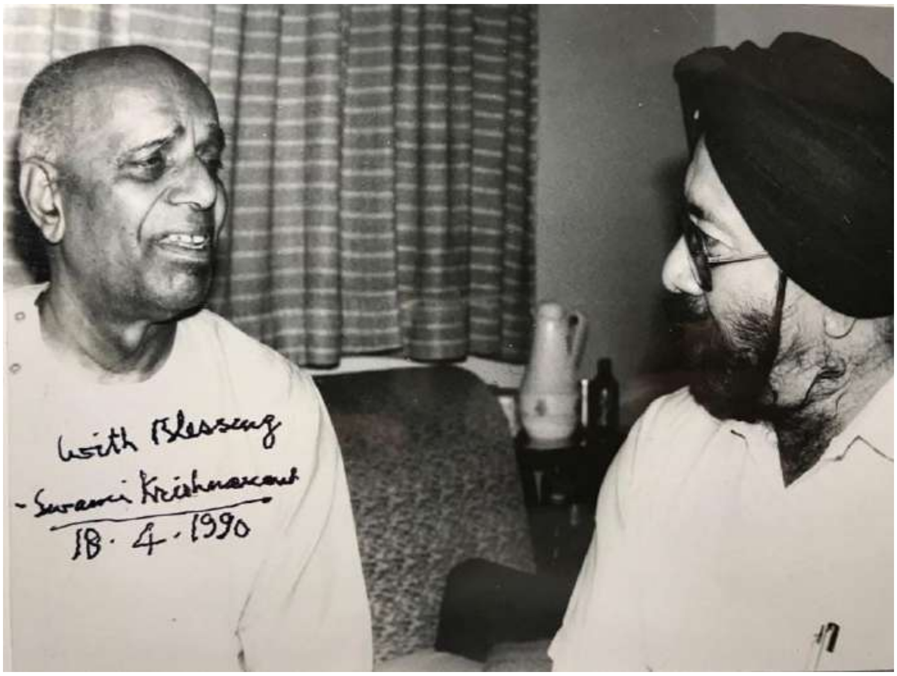

यारों का यार, सदाबहार

महेश खरे

उम्र की बात करें तो हम 72 और त्रिलोक दीप 85 पार हैं। इसलिए मुलाकात भी पुरानी है। 1972 के अंत में जब ग्वालियर के माधव कॉलेज से स्नातक की पढ़ाई शुरू की तो खाली समय में हिंदी दैनिक'स्वदेश'में कभी संपादक के नाम पत्र तो कभी छोटी मोटी खबरें बनाने लगा। 'स्वदेश'हम जैसे अनेक पत्रकारों की पाठशाला है। इसमें अनुज आलोक तोमर, प्रभात झा, बल्देव भाई शर्मा और हरीश पाठक जैसे अनेक नाम उल्लेखनीय हैं। यहीं त्रिलोक दीप से पहली मुलाकात हुई। वे अक्सर ग्वालियर आते और मिलकर ही जाते।

उन दिनों ग्वालियर क्या मध्य प्रदेश की सियासत मिल और महल पर केन्द्रित होने के कारण राष्ट्रीय अखबारों की रुचि का भी केन्द्र बनी रहती थी। ग्वालियर की पूर्व राजमाता विजया राजे सिंधिया, अटल बिहारी वाजपेयी और माधव राव सिंधिया के कारण ग्वालियर भारतीय राजनीति का चर्चित केन्द्र रहा है। बिरला घराने की जेसी मिल एक समय देश के गिने चुने औद्योगिक घरानों में से एक रही है। शायद इसी कारण दिल्ली प्रेस की सरिता, मुक्ता और भूभारती पत्रिकाओं में मुझे भी एंट्री मिल गई। लगभग

हर अंक में मेरी कोई न कोई रिपोर्ट अवश्य रहती। लेखन का यह सिलसिला सालों तक चला। आलोक और हरीश पहले ही पत्रकारिता की राष्ट्रीय मुख्यधारा में जुड़कर दिल्ली शिफ्ट हो गए और मैं 1986 में नवभारत टाइम्स पटना चला गया। त्रिलोकजी जब भी पटना आते मिल कर ही दिल्ली लौटते।

उन दिनों पत्रिकाओं में'दिनमान'और हिन्दी अखबारों में जनसत्ता का बहुत क्रेज बहुत था। हर पत्रकार का सपना दिनमान में छपना होता। दिल्ली जाना हुआ तो स्वाभाविक रूप से आलोक और हरीश से मिलना ही था। हरीश ने लगे हाथ परेश नाथ जी से भी मुलाकात करवा दी। तब दिनमान के संपादक कन्हैयालाल नंदन हुआ करते थे। सोचा 10, दरियागंज भी चला जाए। हरीश ने कहा महेशजी वहां त्रिलोक दीप से जरूर मिल लेना। नंदनजी से तो पहली बार मिलना हो रहा था। लेकिन, दीपजी से पुराना परिचय था ही। साथ में एक रिपोर्ट भी थी। उन दिनों टाइप की हुई रिपोर्ट स्वीकार होती

थी। हम जानते थे। राजनीतिक रिपोर्ट पर तो अधिकृत संवाददाता का ही एकाधिकार रहता था। इसलिए चंबल के बीहड़ों पर खास रिपोर्ट साथ थी। उस दिन नंदन जी से तो मुलाकात हुई पर त्रिलोक जी नहीं मिल सके। पटना भी जब जब दीपजी आते बिना मिले नहीं जाते। नवभारत टाइम्स पटना का संस्करण बंद होने के बाद पांच साल लोकमत समाचार के नागपुर संस्करण में बीते। फिर आलोक मेहता ने हिन्दुस्तान में बुला लिया। पहली पोस्टिंग भोपाल में हुई। भोपाल के अलावा भागलपुर और रायपुर में भी रहे।

अब दैनिक भास्कर की बारी आई। ठिकाना था राजस्थान। कुछ समय जयपुर में गुजारे फिर सीकर का जिम्मा मिला। यहीं त्रिलोक जी फिर टकरा गए। सीकर कार्यालय में वे कमल माथुर को पूछते हुए आए। चैंबर में मुझे देखा तो खुश होते हुए बोले खरे जी आप यहां। मैंने कहा हां, मेरा नया पड़ाव दैनिक भास्कर है। त्रिलोक जी सलासर धाम की यात्रा पर थे। उन्होंने तब बताया कि वे सालासर धाम कई बार जा चुके हैं। त्रिलोक जी का लाभ लेते हुए हमने लगे हाथ अपने पत्रकार साथियों को मुलाकात बुला लिया। दिल्ली के पत्रकार से मिलना क्षेत्रीय पत्रकारों के लिए सुनहरे अवसर के समान होता है। पत्रकारिता के बारे में पत्रकारों की शंकाओं का समाधान हुआ। खोजी रिपोर्टिंग पर तो लगभग शास्त्रार्थ हो गया। रिपोर्टिंग के गुर भी उन्होंने साथियों को बताए। पत्रकारिता की'एनसाइक्लोपीडिया'से मिलकर भास्कर की टीम का तो खुशी का ठिकाना ही नहीं था। भास्कर ने तब मुझे नए संस्करणों की लांचिंग का जिम्मा दिया था। इसी क्रम में पाली संस्करण को री लॉन्च किया। जोधपुर भास्कर में मेरा आखिरी पड़ाव था। 2006 में गुजरात की धरती पर सूरत मेरा प्रवेश द्वार बना। त्रिलोक दीप का दादरा नगर हवेली और सूरत कई बार आना जाना हुआ।

कहने का तात्पर्य यह कि त्रिलोक जी यारों के यार हैं। जिससे भी एक बार मुलाकात हुई, उससे उनका सम्पर्क बना रहा। संगी साथियों से मेल मुलाकात का अवसर वे गंवाते नहीं हैं। पत्रकारिता का यह एक बड़ा गुण है जो उनसे सीखा जा सकता है। मित्रता उनके स्वभाव में है। दिल्ली प्रेस क्लब में जसविन जस्सी, कमलेश कुमार कोहली, सुरेन्द्र मोहन पाठक, धर्मेंद्र मिश्रा, बाबी माथुर, जवाहर धवन में से दो तीन चेहरे अक्सर त्रिलोक दीप के साथ गप्प लड़ाते मिल जाएंगे। देश में नहीं विदेशों में जिससे एक बार मिल लिए वो उनकी स्मृति में दर्ज हो जाता है। पुराने साथियों का जन्म दिन हो...शादी की सालगिरह हो... अथवा जीवन से जुड़ा अन्य कोई महत्वपूर्ण दिन...मुद्दई भूल सकता है। लेकिन, त्रिलोक दीप नहीं। कोई यह याद रख भी सकता है कि 30-40 साल पहले अमेरिका के दौरे में किस राजनयिक के किस सहायक ने उन्हें रिसीव किया था, या होटल में ठहराया था। एक दो देश का दौरा किया हो तो याद भी रह सकता है। अगर आप सौ से अधिक बार विदेश गए हैं बीसियों लोगों से मिले हों तो सभी चेहरे और छोटी से छोटी बातों, घटनाओं, बातचीतों में से कुछ न कुछ तो मिस कर ही देंगे। लेकिन, त्रिलोक जी सारे संस्मरण सिलसिले वार तरीके से लिख सकते हैं। सुना सकते हैं। इतने विस्तार से कि पढ़ने- सुनने वाला दांतों तले उंगली दबा ले।

त्रिलोक जी का यह गुण पत्रकारिता के सूत्र (सोर्स) को विश्वसनीय, भरोसेमंद और व्यापक बनाता ही है, जीवन के विभिन्न पहलुओं में भी उपयोगी साबित होता है। सजगता और आत्मीयता ही व्यक्ति को लोगों से जोड़ती है। यह गुण त्रिलोक दीप के व्यक्तित्व और कृतित्व में कूट कूट कर भरा है। उम्र के 85 बसंत देख चुका असाधारण प्रतिभा का धनी यह इंसान भले ही आज घर से बाहर कम आता जाता है। लेकिन, मित्रों परिचितों, पत्रकारों, साहित्यकारों, उद्योग पतियों और राजनीतिक बिरादरी का चहेता बन कर यादों में बसा रहता है। कहा जा सकता है कि यारों का यार यह बंदा सदाबहार है।

(लेखक दैनिक हिन्दुस्तान के पूर्व स्थानीय संपादक हैं)

आंधियों में प्रज्वलित दीप हैं त्रिलोकदीप

सुनीता सभ्भरवाल

जिस तरह जिंदगी में पहली नौकरी और पहली तनख्वाथह की अहमियत होती है उसी तरह पहले बॉस की भी बड़ी प्रमुख भूमिका होती है। आपने किन लोगों के साथ काम किया है और किन लोगों के साथ आप काम कर रहे हो, ये सब चीजें आपके जीवन की दिशा तय करती हैं। कदम-कदम पर उनका मार्गदर्शन आपके काम के साथ-साथ आपकी प्रतिभा को भी निखारता है। आदरणीय श्री त्रिलोक दीप जी के साथ संडे मेल साप्ताहिक में काम करते हुए मैंने यह बात बखूबी महसूस की। हालांकि दीप जी ने कभी भी किसी को भी यह महसूस नहीं करवाया कि वो एक बॉस हैं। उनके साथ काम करते हुए हमेशा यही महसूस हुआ कि संडे मेल एक परिवार है और दीप जी उसके मुखिया। जब संडे मेल में नौकरी शुरू की तो पता नहीं था कि जिंदगी में यह बदलाव कहां ले जाएगा, क्यों कि उस वक्त मुझे पत्रकार और पत्रकारिता की अहमियत का बिल्कुएल भी अंदाज़ा नहीं था। स्कू ल पास करके ही निकली थी। आकाशवाणी में कुछ महीने काम किया था और जो कुछ वहां सीखा यह नहीं कहूंगी कि संडे मेल में काम नहीं आया, बहुत काम आया।

श्री त्रिलोक दीप जी के साथ काम करना एक संस्थाकन के साथ काम करने के बराबर है। पूरी की पूरी संस्थास हैं अकेले दीप जी। उनके कृतित्वक पर लिखना मेरे बूते के बाहर की बात है, लेकिन उनके व्य क्तित्व पर लिखना मेरे लिए गर्व की बात है। एक पाठक के तौर पर उनके लेखन के बारे में बस यही कहूंगी कि उनके लेखन में जो सादापन है, वह कम ही देखने को मिलता है। एक बार जब उनका लिखा पढ़ने लगे तो आखिरी पंक्ति पर पहुंचकर ही सांस आता है,

क्योंलकि उनके लेख इतने सरल होते हैं कि आपका पढ़े बिना छोड़ने का मन ही नहीं करता।

दीप जी के साथ काम करने वाला हर व्यंक्ति चाहे वह उनका वरिष्ठे हो या कनिष्ठे वे सबका बराबर सम्मारन करते हैं। उनके व्यचक्तित्वर की यह बड़ी विशेषता है। कभी भी अपने मातहत काम करने वालों को उन्होंउने अपना चेला या अपना जूनियर नहीं कहा सभी को सहयोगी ही कहते हैं और न सिर्फ कहते हैं बल्कि समझते भी हैं। आज उनके संपर्क में आए हुए 33 साल हो गए मगर कभी ऐसा नहीं लगा कि उन्होंषने मुझे किसी से कम आंका हो। यही खासियत है दीप जी की। दीप जी द्वारा लिखी हर पुस्तसक और हर लेख में बड़े खुले दिल से उन्हों ने मुझे हमेशा श्रेय दिया। ऐसा केवल दीप जी जैसे कुछ विरले लोग ही कर सकते हैं। वे एक साधारण तबियत के मृदुभाषी और सबके बारे में सोचने वाले व्यहक्ति हैं। पिछले तीन से भी अधिक दशकों से मैं उन्हेंी जानती हूं, इस दौरान जितना मैंने उन्हेंत पहचाना उन्होंीने कभी किसी का अहित करना तो दूर की बात, किसी के अहित की बात सोची तक नहीं होगी। उन्हेंो कभी किसी पर गुस्सा करते देखा।

पिछले अगस्तत की बात है। वैसे तो हमेशा जन्मीदिन पर मुझे बधाई का सबसे पहला संदेश दीपजी का ही आता है, लेकिन अगस्ते 2022 का वह दिन मेरे लिए विशेष दिन था। दीप जी ने मुझे प्रेस क्ल ब बुलाया, खाना खिलाया और अपनी लिखी एक पुस्ताक भेंट की। पुस्तकक का नाम था – अप्रवासी अमेरिका। इस पुस्तसक में दीप जी की अमेरिका यात्रा के संस्म रण हैं, जिन्हें उन्होंकने बहुत ही विस्ताबर से लिखा है। ये पुस्तरक इतनी साधारण भाषा में लिखी गई है कि मेरे जैसा व्यसक्ति जो कभी अमेरिका गया भी नहीं वो भी अमेरिका की यात्रा इन संस्मगरणों को पढ़कर कर सकता है। यह पुस्तीक दीप जी ने अमेरिकन सेंटर के तत्काणलीन प्रमुख बॉब मिलर और मुझे समर्पित की है। यह मेरी जिंदगी में मेरे जन्मनदिन पर मिलने वाला सबसे महंगा तोहफा था और यह सम्मा न मेरे लिए पद्मश्री से कम नहीं। फिर वही कहूंगी कि ऐसा सिर्फ दीप जी ही कर सकते हैं। कोरोना महामारी के बाद त्रिलोक दीप जी ने जिस तरह समय का सदुपयोग किया और सोशल मीडिया पर उन्होंजने अपने संस्म रण लिखने शुरू किए। ये संस्म रण हमारी पीढ़ी और आने वाली पीढ़ियों के लिए इतिहास की किताबों से कम नहीं हैं। मोबाइल पर तीन-तीन चार-चार हजार शब्दों ा के लेख लिखना, दीपजी के धैय और सहनशीलता का प्रतीक है। बहुत कोशिश की कि यह लेख मैं मोबाइल पर लिख पाऊं पर अपने अंदर इतनी सहनशीलता और धैर्य की मैं तो कल्प ना भी नहीं कर सकती। दीप जी के मित्र, उनके साथ काम करने वाले, जिन्होंसने उनके साथ काम नहीं भी किया है, सिर्फ उन्हें जानते हैं वो भी हमेशा उनका जिक्र आते ही तारीफ ही करते हैं। दीप जी की एक खास आदत है कि हमेशा सुबह सबको गुड मॉर्निंग का मैसेज जरूर करते हैं। सुबह आंख खुलते ही फोन उठाओ तो दीप जी का गुड मॉर्निंग मैसेज आया होता है। 19 दिसंबर, 2022 को जब सुबह फोन उठाया तो दीप जी का रोज की तरह कोई मैसेज नहीं था। थोड़ी हैरानी हुई, लेकिन रोज की व्यजस्त ताओं में खो गई और उनको फोन नहीं कर पाई। इसी तरह दो दिन और बीत गए, तीसरे दिन फोन करने ही वाली थी कि दीप जी के छोटे बेटे अमरदीप भाई का फोन आया कि दीप जी को हार्ट अटैक आया है और वो अस्पमताल में भर्ती हैं। उन्होंरने बताया, 'पापा ने मैसेज दिया है कि इस बारे में सिर्फ सुनीता दीदी को बताना है। अभी किसी और को नहीं। अभी हमने अपने रिश्तेददारों को भी नहीं बताया।'यह खबर सुनकर बड़ी चिंता हुई। मैं अस्पभताल तो नहीं गई, क्यों ोकि अस्प ताल में भीड़ लगाना मुझे पसंद नहीं, लेकिन हाल समाचार लगातार लेती रही। डॉक्ट्रों की राय और दीप जी के स्वातस्व्लग के बारे में घरवालों के निर्णयों में लगातार अमरदीप वीर ने मुझे शामिल रखा। उन्होंहने कहा कि पापा के बारे में जो भी निर्णय हम लेंगे, उसमें आपकी राय भी हमारे लिए मायने रखती है। इसके बाद तो मैं क्याल ही कहती, दीप जी ने अपने परिवार का भी एक अहम हिस्सा बना दिया मुझे। इस बारे में अपनी भावनाएं व्यवक्तभ करने के लिए मेरे पास शब्दद नहीं हैं। ये सिर्फ महसूस करने की बात है। दीप जी स्व स्थभ होकर घर आ गए, इससे सुखद बात मेरे लिए और दीप सर को जानने वाले हर शख्सव के लिए कोई और हो ही नहीं सकती। दीप जी अक्ससर कहा करते हैं कि मेरी विरासत, मेरी किताबें सब तुमको ही संभालनी हैं। इसीलिए पिछले दिनों दीपजी ने अपने निजी पुस्तरकालय की सभी किताबें भारतीय जन संचार संस्थांन के पुस्त कालय को उपहार स्वकरूप भेंट कर दीं। इसका श्रेय हमारे महानिदेशक श्री संजय द्विवेदी जी को जाता है। उन्होंहने बड़े खुले दिल से उन सभी किताबों को पुस्तीकालय में उचित स्थाउन दिया।

दीप जी के बारे में कहने के लिए मेरे पास बहुत कुछ है, मगर शब्दों की सीमा मुझे इसकी इजाज़त नहीं देती। अंत में बस यही कहूंगी कि सादा जीवन, उच्चम विचार जैसे कथन दीप जी जैसे लोगों के लिए ही बने हैं।

(सुनीता सभ्भंरवाल, संडे मेल और कई मीडिया संस्थारनों से जुड़ी रहीं और वर्तमान में भारतीय जन संचार संस्थांन, नई दिल्ली से संबद्ध)

दिलदार जांबाज़ पत्रकार त्रिलोकदीप

टिल्लन रिछारिया लेखक एवं पत्रकार

आज जब एक एक कर हिंदी के तमाम पत्रकार भूले बिसरों की श्रेणी में शामिल होते जा रहे हैं पर 87 साल का नौजवान सरदार पत्रकार पूरे जुजून और जिन्दादिली के साथ प्रेस क्लब की रंगीन महफ़िलों को गुलज़ार करता हुआ सोशल मीडिया के तमाम प्लेटफार्मों पर जलवानसीं हो रहा है। यह कभी 10 दरियागंज के सितारा पत्रकार हुआ करते थे। एक जमाना था जब टाइम्स ग्रुप की पत्रिका'दिनमान'को सचिदानंद हीरानद वात्सायन 'अज्ञेय'और बाद में रघुवीर सहाय के साथ साथ त्रिलोक दीप के नाम से भी पहचाना जाता था। 70 के दशक में दिनमान बेहतरीन, सामयिक समाचार साप्ताहिक पत्रिका हुआ करती थी। टाइम्स ग्रुप की हिन्दी पत्रिकाओं में तब धर्मयुग, दिनमान, सारिका. माधुरी, पराग जैसी पत्रिकाएं थीं। सारिका के संपादक थे चर्चित कथाकार कमलेश्वर, धर्मयुग के धर्मवीर भारती, दिनमान के रघुवीर सहाय और पराग के कन्हैयालाल नंदन। समय बदला दिनमान बाद में दिनमान टाइम्स हो गया और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना से होते हुए घनश्याम पंकज तक के दौर देखते हुए ये पत्रिकाएं कल के गाल में समां गई। जब दिनमान अपने स्वर्णिम काल में था तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, त्रिलोक दीप, जवाहर लाल कौल, श्रीकांत वर्मा, महेश्वर दयालु गंगवार, नरेश कौशिक पत्रकारिता के चमचमाते सितारे थे। त्रिलोक दीप उस दौर की पत्रकारिता का सर्वाधिक जाना पहचाना नाम था। सत्ता की राजनीति से लेकर विपक्ष तक और राजनयिक से लेकर नौकरशाह तक... देश ही नहीं दुनिया के तमाम हिस्सों में त्रिलोक जी बखूबी जाने जाते थे। पत्रिकाओं के अवसान के दौर में जब संडे मेल और संडे ऑब्जर्वर जैसे अखबार निकले जोर शोर से निकले तो संडे मेल में त्रिलोक जी ने अहम ज़िम्मेदारी संभाली।

दिनमान के चौबीस सालों की बेशुमार यादें त्रिलोक दीप के ज़ेहन में आज भी दहकती हैं. वह बताते हैं कि दिनमान के प्रति अज्ञेय का कितना ममत्व का भाव था, जिसके चलते उन्होंने दिनमान को एक बेहतर समाचार विचार की पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित कर एक इतिहास रचा .टाइम्स समूह के साहू शांति प्रसाद जैन और रमा जैन का सपना था कि टाइम और न्यूज़वीक के स्तर की हिंदी में भारतीय कलेवर की साप्ताहिक समाचार पत्रिका का प्रकाशन किया जाए. इस सपने को मूर्तरुप दिया था सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने. इससे पहले अज्ञेय बर्कले विश्विद्यालय में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर की हैसियत से अमेरिका में थे. जिन्हें बातचीत की एक लंबी प्रक्रिया और उनकी शर्तें मानने के बाद दिनमान में बतौर संपादक लाया गया था. वर्ष 1965 में दिनमान का प्रकाशन शुरू हुआ.अपने जीवन के तीस साल राष्ट्रीय पत्रकारिता के क्षितिज पर रहे त्रिलोक के शुरुआती तीस साल कडे संघर्ष के रहे. ग्यारह अगस्त उन्नीसो पैंतीस में अविभाजित भारत की तहसील फालिया, ज़िला गुजरात (अब पाकिस्तान) में कारोबारी अमर नाथ के घर में जन्मे त्रिलोक दीप ने ग्यारह बरस की उम्र में देश विभाजन का दंश झेला. बतौर शरणार्थी बस्ती जनपद में रहने के बाद वर्ष 1949 में रायपुर में डेरा जमाया. तीन वर्ष बाद ही पिता का साया सर से उठने के बाद रायपुर के वन संरक्षण विभाग में नौकरी की. उधर वर्ष 1956 में

लोकसभा सचिवालय में हिंदी टाइपिस्ट की वैकेंसी निकली. त्रिलोक दीप ने एप्लाई किया और बतौर हिंदी टाइपिस्ट उनका चयन हो गया. इस तरह अंतिम रूप से ज़िंदगी का पड़ाव दिल्ली साबित हुआ.

त्रिलोक दीप जी के फेसबुक वॉल पर भी इन दिनों उनके अतीत का खजाना नज़र आता है। उनके तमाम संस्मरण, उनकी तमाम स्मृतियां जीवंत हैं। जब उनकी स्मृतियों के पन्ने खुलते हैं तो पढ़ने वाले स्वयं को उस दौर के रूबरू पाते हैं।

रू-ब -रू दिल्ली

मेरा एक पारिवारिक कार्यक्रम में दिल्ली आना हुआ। 30 अक्टूबर 1979, कवि भवानी प्रसाद मिश्र की छोटी बेटी नमिता के विवाह का अवसर है। 21- राजघट कालोनी, नई दिल्ली। यही पता है। सुबह सुबह ट्रेन पहुची थी। रेलवे स्टेशन से सीधे ठिकाने पर पहुच गए। ... शादी वाले घर में अच्छी खासी चहल पहल थी। शादी भी आज रात की ही है। कुछ 2-4 चेहरे थे जिन्हें मैं पहचानता था। बाकी अनजाना मेला था। भवानी प्रसाद जी घर और जान पहचान वालों में'मन्ना जी'; कहे जाते है। बड़े बेटे अमिताभ को शास्त्रीय संगीत और क्रिकेट की कमेंट्री से लगाव है, दूसरे नंबर के आर्चीटेक्ट हैं, तीसरे अनुपम जी ग़ांधी शांति प्रतिष्ठान में हैं, नदी और तालाब इनके सरोकार हैं। बड़ी बेटी नंदिता रेडियो में हैं, छोटी का आज विवाह हो रहा है वे डॉक्टर हैं। इलाहाबाद से अमृत प्रभात के मनोहर नायक भी हैं, अनुपम चाचा जी साले साहब। प्रभाष जोशी और कवि बालकवि वैरागी घर के कामकाज में व्यस्त हैं। भवानी प्रसाद जी हमारे रिछारिया परिवार में ब्याहे हैं। ..पिछले दिनों चित्रकूट के रामायण मेला में आपसे मेरी संक्षिप्त भेंट हो चुकी है। ...मैं तैयार हो कर भवानी प्रसाद जी के पास पहुंचता हूँ, देखते ही बोलते हैं, अरे भाई टिल्लन आओ, आगये। मैं प्रणाम कर बैठ ही रहा हूँ कि एक शख्स बोले, आप ही हैं टिल्लन जी। ...भवानी प्रसाद जी बोले, क्या बात है, कुछ गड़बड़ कर आये हो क्या। शारदा तुम टिल्लन को कैसे जानते हो। ...मैं इनके लेख पढ़ता रहता हूँ। ...वाह भाई, लो दिल्ली ने तो तुम्हें आते ही पहचान लिया। हमें तो यहां अपने को पहचनवाने में, 'माई सेल्फ भवानी प्रसाद'कहते कहते सालों बीत गए थे। ...शारदा और दिल्ली के क्या हाल हैं। ..

अब शारदा पाठक अपनी बिशेष टिप्पणी के साथ दिल्ली का ताज़ा हाल सुनाने लगे। ...दिनमान, हिंदुस्तान, सारिका, नवभारत टाइम्स, नंदन, मनोहर श्याम जोशी, मेनका ग़ांधी की सूर्या में माधवकान्त मिश्र, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर जी और जाने कितनों के नामजद हाल सुना डाले। ..बतरस चलता रहा काफी दर तक। कोई आता कोई जाता संगत सजी रही। ...बाद में सभा विसर्जित होने के बाद मैंने शारदा जी को अपना दिल्ली गाइड बना लिया और जरूरी जानकारी जुटानी शुरू कर दी, कहीं जाना हो तो कैसे जाना है, कोन नंबर की बस जाएगी। ...तो हमारे लिए दिल्ली का पहला खंभा बने शारदा पाठक जी। ...दिन बीता शाम चढ़ने लगी, पांडाल तन गए, बिजली की लड़ियाँ जली, रौनक बढ़ने लगी। बारातियों के स्वागत की व्यवस्था होने लगी। कालीन बिछने लगे, सोफे सजने लगे। ..

...यह गांधी स्मारक निधि का परिसर हैं, विवाह कार्यक्रम के लिए तैयार हो रहा हैं। अनुपम चाचा जी आते जाते खैरियत पूछ जाते हैं। शारदा पाठक जी के साथ देखा तो बोले, अब ठीक है, अब आप पाठक जी की निगहबानी हो तो हम निश्चिंत हैं। ..अतिथि आने लगे, संगीत बजने लगा। लोग सजाने लगे, हमने भी को मौका पाकर अपने को वस्त्रादि बदल कर अवसर के अनुकूल कर लिया। ...बारात आई स्वागत सत्कार होने लगा। द्वारचार हुआ। जयमाल हुआ। भोजन हुआ। उसके बाद घर के अंदर की रस्में होने लगीं। ...इस समागम में साहित्य, संस्कृति और राजनीति के तमाम जाने पहचाने लोग शामिल हैं। अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार जैन और विष्णु प्रभाकर तो सामने ही बैठे हैं। रघुवीर सहाय, कन्हैया लाल नंदन, बाल स्वरूप राही, मनोहर श्याम जोशी, राजेन्द्र अवस्थी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,

त्रिलोक दीप, वेदप्रताप वैदिक और वे तमाम जिन्हें मैं जानता पहचानता नही इस अवसर पर उपस्थित हैं।

रात बीती, सुबह हुई...

जब हम अपनी स्मृतियों के पन्ने पलटते हैं तो दिल्ली के अखबारी अड्डे और 10 दरियागंज की चहल पहल जीवंत हो उठती है। तैयार हो कर हिंदुस्तान टाइम्स की ओर निकल लेता हूँ। ... लक्ष्य है मनोहर श्याम जोशी मुलाकात। ...बस से कनॉट प्लेस उतरता हूँ, कस्तूरबा ग़ांधी मार्ग पर अमेरिकन सेंटर होते हुए हिंदुस्तान टाइम्स की बिल्डिंग पर आ जाता हूँ। ...क्या देखता हूँ कि जोशी तो अपने मित्र बालस्वरूप राही के साथ पान वाले के ठीहे पर खड़े है। दोनों साथियों का यौवन चरम पर है दोनों खूबसूरत हैं। जोशी जी ने तो फिल्मी सितारों वाली खूबसूरती पाई हैं। देवानंद के बारे में केवल खूब छापते ही नही रहते बल्कि काफी प्रगाढ़ रिश्ते भी बना कर रखें है कि कब सितारा किस पर मेहरबान हो जाये। मैं थोड़ा सड़क पर चहलकदमी करता हूँ, फिर सीढ़ियों के रास्ते से मनोहर श्याम जोशी जी के कक्ष तक पहुँच जाता हूँ। ...सामने सोफे पर विराजमान हैं राही जी के साथ। अभिवादन करके अंदर चला जाता हूँ। ...बताता हूँ कि मैंने एक लेख भेजा था'निराला की चित्रकूट यात्रा'...बोले हां बिल्कुल भेजा था, लेख स्वीकृत है, वहां के कुछ फोटो भेजवाइये, लेख छपना है। निराला जी ने एक लंबी कविता लिखी है, जिसमें उन्होंने कर्वी के पास के एक गांव भरकोर्रा से बैलगाड़ी से स्फटिक शिला तक की यात्रा की है। बताते हैं वे काफी समय लगभग दो साल तक इस गांव में रहे। ...इस कविता का शीर्षक है'स्फटिक-शिला'इसका सम्भावित रचना काल 1942 का पूर्वार्ध है -

स्फटिक-शिला जाना था।
रामलाल से कहा
उमड़ पड़े रामलाल
बोले, 'कुछ रुकिए, फिलहाल
गाड़ी तैयार नहीं;
यार, कहीं
ठोकर खा जाइएगा।
कौन कहे, सही हाथ-पैर लौट आइएगा।
कई नाले पड़ते हैं।
चढ़ते है, उतरते हैं।
नौजवाँ, देहाती, पहलवाँ
थकते हैं;
तन्दुरुस्त छकते हैं।
गाड़ी से चलेंगे।
दर्द कहीं बढ़ा तो मलेंगे
पैर।
आदमी भी साथ हैं। " खैर"
मैंने कहा, "चलने की कही,
और देखे है पैर
अपना भी होगा यों गैर?";
गाड़ी आयी,
ख़य्याम की जैसी हो रुबाई
आधी रात को चढ़े
चित्रकूट को बढ़े।
मिला किला पेशवों का करवी में
लिखा हुआ जैसे कुछ अरबी में
रात को ऐसा दिखा
किस्मत में जैसे कुछ हो लिखा।
पयस्विनी नदी पड़ी
जैसे लाज से गड़ी।
पानी थोड़ा-थोड़ा-सा।
गड़ा जैसे रोड़ा-सा

मैं लंच तक वहां रहा फिर 10 दरियागंज का रुख किया। वहां सारिका और दिनमान के ऑफिस हैं।

10 दरियागंज की चहल पहल

निराला जी की चित्रकूट वाली कविता पर लेख मैने दिनमान मे भी भेजा था तो जिज्ञासा हुई कि पता करें कि क्या हुआ। मैंने रघुवीर सहाय जी की बैठक पता की तो चपरासी ने एक केबिन की ओर इशारा करते हुए कहा, चले जाइये। दरवाजा खोल अंदर दाखिल हुए तो देखा गहरा गेरुहा सफारीधारी एक शख्स कुर्सी पर चढ़े ट्यूबलाइट ठीक कर रहे हैं...मैंने उन्हें उलझन में देखा तो कहा कि भाई साहब जरा वो ढिबरी घुमाइए शायद बात बन जाये। ढिबरी घुमाते ही ट्यूबलाइट रोशन हो

उठा। ...इस बीच जब मैंने गौर किया तो पाया कि ये तो सहाय साहब ही मकैनिक की भूमिका में हैं ,

मैंने कहा, भाई साहब आप।

हां भाई मैं, आप तो जादूगर हो भाई, आपकी हिकमत काम आ गई। आइए बैठिए, चाय पीते हैं। ...मैंने बताया कि मैंने निराला जी की चित्रकूट यात्रा पर लेख भेज था। ...हां, दिखा तो था, अब दिखेगा तो छाप देंगे।

मैंने बताया अब रहने दीजियेगा, साप्ताहिक हिंदुस्तान में शेड्यूल हो गया है। ...चलो और कुछ लिखियेगा।

...कुछ देर बैठ कर अब मैं पहुंच गया बगल में ही सारिका में कन्हैया लाल नंदन जी के पास। ...नंदन जी को शारदा शंकर पांडेय'मानस मराल'की याद दिलाई, कहा आपके सहपाठी आपको बहुत याद करते हैं, नमस्ते बोला है आपको। ... कुछ बातचीत के बाद नंदन जी से पूछा, लंदन कब से नहीं गए आप। बोले क्यों क्या बात है, मैंने कहा कि वो बहुत दिनों से नहीं पढ़ा'लन्दन से कन्हैया लाल नंदन'; पराग पत्रिका में इस हेडिंग से काफी लेख आते थे नंदन जी के। ...सारिका के रूप कलेवर

को लेकर पूछा कि कमलेश्वर जी के दौर से कितनी भिन्न है आपकी सारिका। ...और पूछा कि ये मृदुला गर्ग के'चित्तकोबरा'छाप कर आप समाज को क्या बताना चाहते हैं। ...और कामतानाथ के साथ अपने इंटरव्यू के इंट्रो लिखा है। ...कामता ने अपना दारू का गिलास उठाया और मैंने अपने अपने सवाल। ऐसे मैं अगर फिराक साहब आप के सामने होते तो कौन क्या उठाता। ... वो मेरा शरारती मूड ताड़ गए बोले। चाय समोसा और मंगाऊं। ...बाद में जब भी कहीं मिलते तो कहते'; यार एक तरफ नंदन हैं और एक तरफ टिल्लन'; बड़े प्रेम और आत्मीयता के साथ हमने नंदन जी की संगत का भरपूर लाभ लिया। शाम रमेश बतरा के सात बीती। मैं अक्सर सारिका में रमेश और दिनमान में महेश्वर दयालु गंगवार साथ बैठता था। त्रिलोक दीप जी से आते जाते दुआ सलाम होती थी। त्रिलोक दीप जी नवजवानों में नवजवान थे। सर्वेश्वर दयाल जी हेडमास्टर की तरह टहलते हुए सब पर निगाह रखते थे। ... तो ये थे हमारी पहली दिल्ली यात्रा के क्षेपक प्रसंग।

फिर जब दिल्ली आये 1989 में'वीर अर्जुन'अखबार में तब तक त्रिलोक दीप नंदन जी के साथ जी'संडे मेल'जा चुके थे।

अज्ञेय जी के प्रति श्रद्धा

त्रिलोक दीप के ज़ेहन में आज भी दिनमान के चौबीस सालों की बेशुमार यादें बसी हैं. वह अक्सर मुलाकातों में बताते हैं कि दिनमान के प्रति अज्ञेय बहुत सजग रहते थे। एक एक स्टोरी को स्वयं देखते थे, यह उनका पैशन था. रिपोर्टर स्टोरी तैयार करता और स्टोरी संपादक के कक्ष में भेजी जाती. संपादक अज्ञेय स्टोरी पढ़ रहे हैं और बाहर बैठे रिपोर्टर की सांसें रुकी हैं कि उसकी स्टोरी में कितनी काट पीट अज्ञेय जी करते है. ऐसा भी नहीं था कि अज्ञेय जी शाबाशी न दें. पीले रंग के काग़ज़ पर लिखने के शौक़ीन अज्ञेय जी ऐसे जीवन्त संपादक थे कि अधीनस्थो की प्रशंसा मुक्त कंठ से करते और यदि कोई उनकी प्रशंसा करें तो बस मुस्करा दिया करते. अज्ञेय बड़े प्रयोगशील सम्पादक थे। वह क्राइम की रिपोर्टिंग करने वाले रिपोर्टर से कला और संगीत समारोह की और कला और संगीत की रिपोर्टिंग करने वाले रिपोर्टर से रक्षा और विदेशी मामलों की रिपोर्टिंग करा लिये करते. इसमें अधीनस्थो के लिये यह संदेश छिपा था कि कोई इस ग़लतफ़हमी को अपने दिमाग़ में न पालें कि उसके बग़ैर कोई काम रुक जाएगा. त्रिलोक दीप बताते कि अज्ञेय जी के मस्तिष्क में हर समय, हर पल कुछ न कुछ रचनात्मकता चलती रहती. अपनी ही खींचीं गई लकीर से बड़ी लकीर खींचने की ज़िद्द उनकी धुन थी. ग़जब यह कि उनके शांत, सौम्य और मुस्कुराते मुख से कोई जान ही नहीं पाता कि भीतर रचनात्मकता किस वेग से उफान मार रही है. वह बताते हैं कि गोवा के आज़ाद होने पर आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने गोवा में महा सम्मेलन कराया.संपादक के नाते वह किसी रिपोर्टर को भेज सकते थे पर नहीं, इस सम्मेलन को उन्होनें बतौर रिपोर्टर कवर किया और ग़ज़ब की रिपोर्टिंग की, जिसे पढ़कर फणीश्वर नाथ रेणु ने अचम्भित होते हुए कहा कि''भाई, आप बड़े साहित्यकार हो, चित्रकार हो, फ़ोटोग्राफ़र हो, कवि हो, विचारक हो यह तो जानता था परंतु इतने ग़ज़ब के रिपोर्टर भी हो, यह अब जान पाया हूं."....अज्ञेय शांत, सिर्फ़ मंद मंद मुस्करा दिए. ...ऐसे संपादक के निर्देशन में काम करने के मिले अवसर को त्रिलोक अपने जीवन की अमूल्य निधि मान कर खुश होते हैं.

रघुवीर सहाय का दिनमान अज्ञेय के संपादन में 1965 में प्रारंभ हुआ दिनमान 1969 तक आते आते एक समाचार विचार की पत्रिका के रूप में स्थापित हो चुका था. 1969 में अज्ञेय ने दिनमान से विदा ली और बड़ी लकीर खींचने विदेश चले गए. उस समय नवभारत टाइम्स के विशेष संवाददाता के पद पर काम कर रहे कवि रघुवीर सहाय को दिनमान के संपादक का कार्यभार सौंपा गया.रघुवीर सहाय की इस टीम में राम सेवक श्रीवास्तव जो कवि थे किंतु प्रादेशिक खबरो पर उनकी खासी पकड़ थी. राजनैतिक मामलों पर जवाहर लाल कौल जैसी राजनैतिक समझ विरले पत्रकारों की हुआ करती है. योगराज थानी खेल कूद की दुनिया में बेताज बादशाह माने जाते थे और उनके कॉलम को उनके प्रशंसक उसी चाव से पढ़ते थे जैसे सर्वेश्वर जी के चरचे और चरखे को. नारी जगत और दुनिया भर की कॉलम पर शुक्ला रुद्र की पैनी दृष्टि की भी काफी चर्चा हुआ करती थी. हैदराबाद से कल्पना की संपादकी के दौरान ही प्रयाग शुक्ल कला मर्मज्ञ के रूप में स्थापित हो चुके थे, जो दिनमान के शुरुआत से टीम के महत्वपूर्ण सदस्य थे. प्रयाग शुक्ल को न केवल पेंटर्स अपितु आर्ट गैलरियों के संचालक, आयोजक बहुत सम्मान देते.त्रिलोक दीप बताते हैं कि उस समय प्रयाग जी के साथ नाटकों को देखने, कला गैलरी में पैंटर्स द्वारा पेंटिंग करने और विदेशी दूतावासों की पार्टियों का लुत्फ़ उनके भाग्य में रहा है. रघुवीर सहाय के समय में कवि, चित्रकार विनोद भारद्वाज और नेत्र सिंह रावत के दिनमान में आने पर यह तिकड़ी बन गयी,

जिनकी कला संस्कृति, अंतराष्ट्रीय सिनेमा पर ग़ज़ब की पकड़ थी. मैं जानता था कि वह पंजाबी ब्राह्मण हैं. फिल्मों पर भी विनोद भारदवाज की अच्छी पकड़ थी और फिल्म फेस्टिवल वह और नेत्रसिंह रावत कवर किया करते थे. रावत के दूरदर्शन चले जाने के बाद विनोद भारदवाज इस काम को पूरी तरह से अंजाम देने लगे. इस सिलसिले में रूस के पिट्सबर्ग भी गए थे और अपनी अलग पहचान स्थापित की. विदेशी सिनेमा पर जब वह वहां के फिल्म निर्देशकों से घंटो बात करते तो वह चकित हो जाते. जब रघुवीर सहाय ने दिनमान की संपादकी संभाली तो वह अनुपम मिश्र को लाना चाहते थे लेकिन अनुपम जी उन्हें सुझाव दिया कि उनकी राजनीति में कोई रुचि नहीं बेहतर हो आप बनवारी जी को राज़ी कर लें. कभी अनुपम मिश्र और बनवारी मिलकर दिनमान के लिए लिखा करते थे. बनवारी तब तक दिनमान में रहे जब तक रघुवीर जी रहे. उन्होंने दिनमान के लिए कई खोजपूर्ण और एक्सक्लूसिव संवाद लिखे थे जिनकी खूब चर्चा हुआ करती थी.दिनमान के मालिकों से एक सैद्धांतिक विवाद के कारण 1983 में रघुवीर सहाय को दिनमान की संपादकी से हटाकर नवभारत टाइम्स की संडे मैगजीन का प्रभारी बनाया जिसकी परिणति रघुवीर सहाय के टाइम्स समूह से इस्तीफ़े के रूप में हुई.दिनमान की संपादकी कवि, लेखक कन्हैया लाल नंदन को सौंपी गई. दिनमान जैसी समाचार पत्रिका का बेहतर संपादन नंदन के लिए दुरूह कार्य था. वह भी ऐसे हालात में जब पंजाब में आंतकवाद सर चढ़ रहा था. जवाहर लाल कौल, महेश्वर दयालु गंगवार. त्रिलोक दीप जैसे लोग जो दिनमान की पुरानी टीम के सदस्य थे ही के अलावा आलोक मेहता, उदय प्रकाश, संतोष तिवारी, धींरेंद्र अस्थाना, जसविंदर को टीम में लाया गया.

आतंकवाद और त्रिलोक दीप की दीवानगी

पंजाब के आंतकवाद को कवर करने का सारा ज़िम्मा त्रिलोक दीप को इस गरज से सौंपा गया कि सिख हैं, आंतक के भयावह माहौल में अपने आप को सुरक्षित रखते हुए जितने भीतर तक जाकर त्रिलोक दीप कवर कर सकते हैं दूसरा कोई नहीं कर पाएगा. त्रिलोक दीप के लिए अनुभवी होने के बावजूद चुनौती थी जिसे त्रिलोक दीप ने शानदार ढंग से निभाया भी.दिनमान के उस दौर के अंकों में पंजाब की रिपोर्टिंग एक ऐतिहासिक महत्व रखती है. उन दिनों त्रिलोक दीप सूत्रों से ज़रा सा भी सुराग मिलने पर संपादक को बिना बताये पंजाब चले ज़ाया करते थे, इसकी छूट नंदन जी ने ही उन्हें दी हुई थी. अमृतसर में संत हरचंद सिंह लोंगोवाल और संत जनरैल सिंह भिंडरावाले और लंदन के पास रेंडिग में जगजीत सिंह चौहान का इंटरव्यू दिनमान में विशेष प्रचार के साथ छपे थे, जो त्रिलोक दीप ने ही किये थे. पंजाब के आंतकवाद की रिपोर्टिंग करने के क्रम में त्रिलोक दीप को जान की परवाह किये बिना रिपोर्टिंग करने का लगभग नशा सा हो गया था.दिल्ली के सिख दंगों का खौफनाक मंजर यह त्रिलोक दीप जी की दीवानगी ही थी कि 31 अक्टूबर 1984 को प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी की हत्या होने पर दिल्ली पुलिस हैड क्वार्टर तथा तीनमूर्ति भवन, जहां श्रीमती का पार्थिव शरीर रखा गया था, वहां पहुंचने वाले वह एक मात्र सिख पत्रकार थे. एक नवम्बर को भी सुबह ही त्रिलोक रिपोर्टिंग के लिए निकल पड़े. दिन में जब वह तीनमूर्ति भवन पहुँचे तो अमिताभ बच्चन, राजीव गांधी के एक दम क़रीब खड़े थे. उस समय तक माहौल ख़राब हो चुका था.सिख होने के कारण भीड़ से आवाज़ें आने लगी. उस समय पुलिस अधिकारी गौतम कौल व हरिदेव पिल्लई जो कि त्रिलोक दीप से वाक़िफ़ थे, ने त्रिलोक को भीड़ का मूड देखते हुए धीरे से निकल जाने का इशारा किया. त्रिलोक दीप वहां से तो आ गये पर डरे नहीं, घर नहीं लौटे. शाम तक रिपोर्टिंग करते रहे. वहां से दस दरियागंज दिनमान के कार्यालय पहुंचे तो वहां भीड़ पहले से ही मौजूद थी. भीड़ को पता था कि यहां काम करने वालों में एक सिख भी है. भीड़ में त्रिलोक दीप को घेरना ही चाहा था कि नंदन जी तुरंत आ गए.दिनमान टीम के अन्य लोग शुक्ला रूद्र व महेश्वरदयालु गंगवार भी आ गए और लोगों को समझा बुझाकर त्रिलोक दीप को अंदर ले आए. हौसला देखिए, त्रिलोक दीप तक भी घबराए नहीं. अंदर आकर इत्मीनान से पानी पीया और टाइपराइटर पर रिपोर्ट टाईप करने लगे. जितनी तेज़ी से त्रिलोक दीप रिपोर्ट टाइप कर

रहे थे, उससे कई गुना तेज़ी से दिल्ली की फ़िज़ाओं में हिंसा का ज़हर घुल रहा था. रिपोर्ट तैयार कर नंदन जी को दी. नंदन जी चिन्तित कि यह बंदा घर कैसे पहुंच पाएगा ? तुरंत ही टाइम्स समूह के जनरल मैनेजर श्री रमेश चंद्र से बात की.तय हुआ कि त्रिलोक दीप के अलावा समूह में एक और सिख परमजीत सिंह है. दोनों को आज रात घर न भेजकर समूह के 4 तिलक मार्ग स्थित गेस्ट हाऊस में ठहराया जाए. दस दरियागंज से मोटर साइकिल पर पहले महेश्वर दयालु गंगवार निकले ताकि आगे के माहौल को भांप सकें. उसके बाद नंदन जी ने अपनी गाड़ी में पीछे की सीट पर त्रिलोक दीप को लगभग लिटा दिया ताकि शीशे से बलवाई यह न जान सकें कि गाड़ी में कोई सिख है. त्रिलोक दीप को गेस्ट हाऊस सुरक्षित पहुचा कर ही नंदन जी वहां से लौटे और त्रिलोक दीप को हिदायत दी कि सुबह चार बजे जनरल मैनेजर रमेश चंद्र उन्हें घर छुड़वा देगें.बहरहाल सुबह भोर में ही त्रिलोक दीप अपने घर सुरक्षित पहुंच पाए. इस वाक़्ये के इतने साल बाद भी नंदन जी और रमेश जी के प्रति उनकी आंखें श्रद्धा से भीग जाती है. यह वाक्या जगजाहिर है कि त्रिलोक दीप जी कितने दिलदार और हौसलेमंद इंसान हैं .चौबीस साल तक रात दिन दिनमान में गुजारने वाले त्रिलोक दीप ने अक्टूबर 1989 में दिनमान से अलविदा कह अपने मित्र संजय डालमिया के आग्रह पर साप्ताहिक संडे मेल के कार्यकारी संपादक का कार्यभार संभाला और 1989 से 1995 तक संडे मेल साप्ताहिक के कार्यकारी संपादक रहने के उपरांत 1995 में सक्रिय पत्रकारिता से सेवानिवृत्ति ली.आज के त्रिलोक दीप आज के त्रिलोक दीप यारों के यार और हरदिल अजीज़ इंसान हैं। पत्रकारों की नई पीढ़ी के रहनुमा और पत्रकारिता के चलते फिरते इतिहास का नाम त्रिलोक दीप है। सोशल मीडिया पर खासे सक्रिय त्रिलोक दीप यदि आपको फोन कर आपके जन्मदिन पर आपको बधाई दें तो समझिये कि दिलों के तार जोड़ने वाला कोई बुजुर्ग एक बड़ी दुआ बन कर आपके सर पर हाथ रखे हुए है।

काका के भा जी

पापा सुदीप हमें यह बताते, जब भी वे त्रिलोक दीप जी से मिलते तो उन्हें लगता कि अपने ही परिवार से मिले हों. दिलचस्प बात ये है कि दीप जी रावलपिंडी के हैं और मेरे पापा सुदीप की दादी भी रावलपिंडी की ही थीं. दीप जी पापा से लगभग एक दशक बड़े होने से - सुदीप जी उन्हें बड़े भाई-सा सम्मान देते और'भा-जी'कहकर संबोधित करते और पापा को प्यार से दीप जी'काका'बुलाते.

दीप जी पापा सुदीप को'टाइम्स ऑफ इंडिया'की'सारिका', 'दिनमान', और 'धर्मयुग' मैगज़ीनों के जमाने से जानते थे. पापा सुदीप को'संडे मेल'का सबसे पहला नियुक्ति पत्र, सहायक संपादक त्रिलोक दीप जी की तरफ से ही आया था. सुदीप'संडे मेल मुंबई'में विशेष संवाददाता बने. वे साप्ताहिक इश्यू के लिए, मुंबई में रहकर, महाराष्ट्र की राजनीतिक, सांस्कृतिक, समाजिक, आर्थिक गतिविधियों पर नज़र रखते और रंगीन पत्रिका के लिए - कला, संस्कृति पर विशेष सामग्री के लिए भी लिखा करते. सुदीप जी का 'संडे मेल' से जुड़ना, त्रिलोक दीप जी की ही उपलब्धि है. 'संडे मेल'वक्त के दौरान, दिल्ली के दफ्तर में सुदीप ने देखा कि हिंदी विभाग के स्टाफ-शख्स दीप जी के पास अपनी समस्याओं को लाकर, हल और सुझाव पूछते. पापा सुदीप जी के अनुसार दीप जी की जीवन शैली में दिल्ली के पत्रकारों के उत्तम रुतबे की झलक थी.

दीप जी मुंबई और कोलकाता आते जाते रहते थे; उनका यही प्रयास रहता था कि'संडे मेल'के सभी हिंदी और अंग्रेज़ी साथियों में परस्पर सद्भावना बनी रहे. मुंबई के हर दौरे के साथ पापा सुदीप और उनके संबंध प्रगाढ़ होते जाते. पापा के साथ मुंबई प्रेस क्लब, सेंटोर होटल, ताज, लीला-पेंटा मैं शामें व्यतीत करते. कभी कभी तो सेंटोर होटल के जनरल मैनेजर, महाप्रबंधक, खुद आकर दीपजी के साथ बैठते और आदर सम्मान से बातचीत होती. भले बम्बई या दिल्ली हो, हर जगह लोग दीप जी का बहुत सम्मान करते. पापा का कहना था कि सरकारी या ऊंचे ओहदों पर बैठे लोगों के साथ भी दीप जी के संबंध बहुत घनिष्ठ थे. पापा सुदीप के जन्मदिन के दिन उनको सबसे पहला फ़ोन कॉल खुशआमदीद त्रिलोक दीप जी से ही आता. दीप जी ने अच्छे और कठिन समय में हमारे परिवार के साथ रहने के लिए समय निकाला और कई बार फोन के माध्यम से जुड़े रहे, भले ही दूरी और पापा के स्वास्थ्य ने इसे चुनौतीपूर्ण बना दिया था. त्रिलोक दीप जी का'रिश्ते को जीना और निभाना'- इसे आज तक सुदीप परिवार (पत्नी विजया, बेटी बिंदिया, बेटा कार्तिक) सबसे अच्छा गुणवत्ता और शाश्वत उपहार मानता है. हमारे स्वर्गीय पिता सुदीप जी की ओर से हम आपको सम्मानित करते हैं श्री त्रिलोक दीप जी, हमारा सदर प्रणाम और प्यार.

बिन्दिया हैलोअर (सुदीप जी की बेटी)

प्रयाग शुक्ल

दिन'दिनमान'के,
अपने ही गजब तापमान के!
दीप जी के साथ के
साथ चले आ रहे,
उनकी उजली हंसी
वैसी ही उजली है,
बात बड़ी सुंदर यह !

उनके दुपहिया पर,
छानी रोज दिल्ली,
देखी प्रदर्शनियां !
कहां-कहां घूमे !

चाय की चुस्कियां,
पास-पास मेजें हमारी वे,
साथ चली आती हैं !
अब भी वे हमसे बतियाती हैं !

उन पर जो था स्याही-सोख्ता,
उस पर ही कुछ-न-कुछ
काट-कूट करता ही रहता था,
रोज-रोज,
कुछ फूल-पत्तियां, खिड़की-दरवाजे
या अन्य कई आकार,
उभर-उभर आते थे !
आकर तब दीप जी,
पास खड़े होते थे,
उनको निहारते थे,
जैसे मैं होऊं कोई चित्रकार !!
आज जब बनाता मैं चित्र रोज-रोज
उनके मोबाइल पर
अक्सर हूं भेजता,

दिन वे'दिनमान'के,
गजब तापमान के,
याद आ जाते हैं !

चाहे हो 10 दरियागंज,
या हो चाहे नंबर-7 बहादुर शाह जफर मार्ग
का
कहां कभी भूला है !
कितने आंधी-पानी, गर्मियां-सर्दियां –
आयीं सब चली गयीं –
साथ पर, हमारा यह बना ही रहा है
बना रहे !!

उन जैसा सदाशयी,
हंसता-मुस्काता ही,
हौसला बढ़ाता ही –
मिला है मित्र जो –
भला-मानुष
है सचमुच हिम्मती !
कीमती हम सबकी खातिर वह !
रोज-रोज वॉट्सऐप,
रोज-रोज, या अक्सर बातचीत,
है कितने काम की –
दीप जी !
महानगर, दिल्ली यह, एनसीआर,
बढ़ता चला गया !
बने कई फासले !
लेकिन न बना कभी कोई भी फासला,
दीप जी,
मेरे और आप बीच !!
उतने ही निकट हम
मन से हैं,
साझीदार, कितनी ही बातों के –

'अज्ञेय', कभी'रघुबीर जी', कभी'सर्वेश्वर
जी'
और कभी'जोशी जी'
याद आ जाते हम दोनों को –
क्या दिन थे, वे भी'दिनमान'के !!
लगता है, हम दोनों जैसे सहपाठी हों !
एक ही, एक ही स्कूल के !
दिन ये भी सुंदर हैं,
जब हम बतियाते हैं,
फोन पर, लगता है,
साथ हैं, बातें कर लेते हैं,
मन भर लेते हैं –
यह क्या कुछ कम है,
दीप जी ! दीप जी !
जो भी पास आया है, आपके,
उसे मिला प्रेम !
पूछी कुशल – क्षेम !
भाव यह, स्व-भाव जो आपका,
कोमल, सुंदर और मधुर,
मीठापन, अपनापन, रहता है दुहराता,
रोज वह अपने को
ताजा बना रहता है !
प्रेम यह, ताजगी, सादगी आपकी,
मिले हमें, मिले उन सबको जो,
घेरे में आपके रहते ही आये हैं,
कुछ-न-कुछ कहते ही आये हैं,
प्रेममय,
सदा-एक-दूसरे से !
मिलते रहें !
साथ-साथ चलते रहें,
इसी तरह,
इसी तरह
दीप जी !!

त्रिलोक दीप : हिंदी पत्रकारिता की अखण्ड ज्योति

किसी प्रिय ने कहा तो त्रिलोक जी दीप हो गए !

गिरीश पंकज

पत्रकारिता और साहित्य की वर्तमान पीढ़ी शायद त्रिलोक दीप जी के नाम से भले ही परिचित न हो लेकिन मेरे जैसे असंख्य लोगों ने त्रिलोक जी को अपने समय के महान पत्रिका'दिनमान'के जरिए जाना और उन्हें खूब पढा। नई पीढ़ी के जो लोग सोशल मीडिया में सक्रिय हों, उन्हें त्रिलोक दीप जी के फेसबुक अकाउंट को ज़रूर देखना चाहिए। तब उन्हें पता चलेगा कि त्रिलोक दीप किस व्यक्तित्व का नाम है। नवासी साल की उम्र में भी आप पूरी तरह से फिट हैं। चैतन्य हैं। और आए दिन कुछ-न-कुछ है बेहतर चिंतन पेश करते हैं। हम सबकी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इसी तरह स्वस्थ रहते हुए सौ साल पूर्ण करें और हम लोग उनके सम्मान में एक भव्य आयोजन करें। त्रिलोक जी अतीत की सुंदर, यादगार घटनाओं को सधी हुई भाषा में लिखकर नई पीढ़ी को बताते रहते हैं कि हिंदी पत्रकारिता का उनके समय का दौर कितना स्वर्णिम था। मेरे लिए यह जानकारी बेहद सुखद थी कि त्रिलोक जी का छत्तीसगढ़ से गहरा नाता रहा है। उनकी स्कूली शिक्षा रायपुर में हुई।

कुछ समय तक छत्तीसगढ़ कॉलेज में भी उन्होंने पढ़ाई की। यही वह अपने एक'प्रिय'के कहने पर अपने नाम के साथ'दीप'शब्द जोड़ लिया और त्रिलोक सिंह जुनेजा से'त्रिलोक दीप'हो गए। और यही नाम फिर पत्रकारिता जगत की पहचान बन गया।

त्रिलोक जी के कुछ रिश्तेदार इस वक्त रायपुर में ही निवास कर रहे हैं। रायपुर से पढ़ाई करने के बाद त्रिलोक दिल्ली चले गए। वहां शुरुआती दौर में लोकसभा सचिवालय में हिंदी के टाइपिस्ट हो गए। लेकिन महान रचनाकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन

अज्ञेय के आग्रह पर वे सन 1966 में दिनमान से जुड़ गए और उसके बाद उनकी कलम ने जौहर दिखाना शुरू किया। दुनिया के अनेक देशों की यात्रा करके वहां के बारे में रोचक संस्मरण लिखने में त्रिलोक दीप जी को महारत हासिल थी। उन्हें मैं बड़े चाव से पढ़ता था और सोचता था कभी इस पत्रकार से भेंट होगी। देर आए दुरुस्त आए ; पिछले कुछ वर्षों से उनसे मेरी गहरी आत्मीयता हो हो गई। फेसबुक के माध्यम से जुड़ गए। फिर दिल्ली में मुलाकात हुई। मैंने एक दो आयोजकों को जब इनके बारे में बताया तो वे प्रसन्न हुए और उन्होंने ससम्मान उन्हें अपने कार्यक्रम में अतिथि के रूप में बुलाया और उनकी बातें सुनकर सब ने मुक्तकंठ से उनके विचारों की सराहना भी की। दो वर्ष पहले आलमी टीवी मीडिया ने जब कुछ वरिष्ठ पत्रकारों का सम्मान किया तो उन्होंने दीप जी को भी बुला कर आजीवन साधना सम्मान से सम्मानित किया।

त्रिलोक जी का मेरे प्रति बेहद स्नेह रहा है। वह शायद इसलिए भी है कि मैं रायपुर में रहकर पत्रकारिता और लेखन कर रहा हूँ। मेरे काम को वे निरंतर सराहते हैं। आशीर्वाद देते हैं। यह मेरे लिए बहुत बड़ी बात है। उनके परम साथी पत्रकार रमेश नैयरजी से उनका घरोबा था। दुर्भाग्यवश नैयरजी नहीं

रहे। उन्हें याद कर कभी-कभी त्रिलोक दीप भावुक हो जाते हैं और कहते हैं, ’वे एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी पत्रकार थे। " मुझे भी वे तिलोक जी हमेशा प्रोत्साहित करते रहते हैं। जब मुझे पता चला कि’सम्पर्क भाषा भारती’पत्रिकात्रिलोक दीप जी पर एक विशेषांक निकाल रही है, तो मुझे लगा उन के बारे में मुझे भी कुछ-न-कुछ लिखना ही चाहिए। और कलम चल पड़ी। ....

निरंतर अध्ययन शील और लिखने-पढ़ने वाले पत्रकार त्रिलोक जी का जन्म 11 अगस्त 1935 को पाकिस्तान की तहसील फालिया में हुआ था। देश जब आजाद हुआ तो बंटवारे का दंश सिखों को भी झेलना पड़ा। त्रिलोक जी का परिवार भी उनमें से एक था। सन 1949 में वे पिता के साथ रायपुर चले आए और यहीं सप्रे स्कूल में उनकी शिक्षा दीक्षा हुई, इसलिए वे रायपुर के अपने स्कूली दिनों को और उस दौर के अपने मित्रों को शिद्दत के साथ याद करते हैं। अपने शिक्षक स्वराजप्रसाद त्रिवेदी जी को भी खूब याद करते हैं, जिन्होंने उनको हिंदी लेखन के लिए प्रेरित किया। त्रिवेदी जी जाने-माने पत्रकार और साहित्यकार और स्वतंत्रता सेनानी भी थे। कॉलेज की बाकी पढ़ाई उन्होंने दिल्ली में की, और वही सरकारी नौकरी भी लग गई।

अपने अतीत को याद करते हुए त्रिलोक दीप जी भावुक हो जाते हैं। रायपुर के जुनेजा परिवार को हमेशा याद करते हैं पिछले जिन्होंने को याद किया मैंने अपने विचार जी जुनेजा को डॉग जी का नंबर दिया तो हर जीतने भी उनसे बात की पिछले दिनों उन्होंने जानकारी साझा की कि’'अगस्त, 1947 से रावलपिंडी से टिनिच, बस्ती, से लेकर रायपुर और वहां से दिल्ली। सभी स्थानों का मेरे जीवन में महत्व रहा। बस्ती में हिंदी पढ़ी क्योंकि रावलपिंडी में हमें उर्दू पढ़ाई जाती थी। रायपुर में माध्यमिक स्कूल तक पढ़ाई कर कुछ वक़्त छतीसगढ कॉलेज में भी बिताया। 1952 की बैसाखी हमारे लिए काल बन कर आयी और 38 साल की उम्र में मेरे पिताजी का निधन हो गया। भला हो मेरे चाचा श्री परमानंद का कि उनके सौजन्य से आगे की पढ़ाई की। कुछ समय तक रायपुर के वनसंरक्षक के कार्यालय की नौकरी की, फिर 1956 में दिल्ली में लोकसभा सचिवालय में सर्विस मिल गयी। यहां रहते हुए मैंने बीच में छूटी पढ़ाई की, लोकसभा का पहला, दूसरा और काफी हद तक तीसरा सत्र देखा। बहुत से मंत्रियों और सांसदों से परिचय हो

गया, जो मेरे पत्रकारिता के जीवन में बहुत काम आया। करीब चौबीस वर्ष तक मैं’दिनमान’में रहा। पहली जनवरी, 1966 में मैं’दिनमान’से जुड़ा और 31 अक्टूबर, 1989 तक रहा। पहली नवंबर, 1989 को मैं’संडे मेल’में कार्यकारी संपादक बन कर चला गया। इस वक्फे में केवल अपने देश के राजनेताओं के ही इंटरव्यू नहीं लिये बल्कि बहुत सी विदेशी हस्तियों के इंटरव्यू लेकर’दिनमान’में विस्तृत रपटें छापी। जर्मनी के बुंदेस्ताग, ब्रिटेन और कनाडा के हाउस ऑफ़ कॉमन्स के चुनाव कवर किये तथा पाकिस्तान के सात दौरों के दौरान वहां की राष्ट्रीय असेंबली के तीन चुनाव। इनमें किसी न किसी चुनाव में मेरी मुलाकात इंडियन एक्सप्रेस के शेखर गुप्ता, हिंदुस्तान टाइम्स के डी. सेन या हरिन्दर बावेजा, टाइम्स ऑफ़ इंडिया के वी.के. देथे और’संडे मेल’(अंग्रेज़ी) के गुरकीरत (जी.के.) सिंह तथा प्रवीण जैन से भी हो जाती। ‘संडे मेल’में रहते मैंने पाकिस्तन का सघन दौरा किया था। रावलपिंडी में तोपखाना बाज़ार, बाईस नंबर चुंगी में मैंने अपना घर और डैनीज स्कूल भी देखा था। लिखने की शुरुआत तो मैंने 1951 -52 में रायपुर में रहते हुए’महाकोशल’से कर दी थी। "

रायपुर से गहरा नाता..

त्रिलोक दीप जी भले दिल्ली में रहते हैं लेकिन अपने स्वर्णिम अतीत को हमेशा याद करते हैं। फेसबुक के माध्यम से वह अपने रायपुर के दिनों को बेहद भावपूर्ण तरीके से याद कर चुके हैं। इस पर बहुत विस्तार के साथ उन्होंने लिखा है। यहां उसका एक अंश ही दे रहा हूं जिसमें इन्होंने बताया कि इनके दादा सुंदरसिंह जुनेजा जी रायपुर में रहते थे। उनके दो बेटे इंदर सेन और भगवंत सिंह थे। इंदर सेन सहजधारी थे जबकि भगवंत सिंह केशधारी। दोनों भाई मुझे बहुत प्यार करते थे। रिश्ते में वह दोनों त्रिलोक जी के चाचा लगते थे। सुंदरसिंह जुनेजा जी उनके दादा गोबिंदराम जुनेजा के चचेरे भाई थे। फालिया में इन के घर साथ साथ ही थे। "हम लोगों का गुरुद्वारे के पीछे और उनका एक कोने में काफी बड़ा हवेलीनुमा मकान था। मेरे दादा का जल्दी देहांत हो गया था लेकिन सुंदरसिंह जुनेजा जी ने हमें उनकी कमी नहीं खलने दी। रायपुर में रहते हुए भगवंत की शादी हुई और उनकी बारात गोंदिया गयी थी जिसमें मैं भी शामिल हुआ। गोंदिया में मेरी ओर भी कुछ लोग आकर्षित हुए थे। रायपुर लौटने पर दादा सुंदरसिंह जी ने मेरे रिश्ते की बात चलायी। तब मेरे पिता जी का निधन हो

चुका था। मेरी माँ ने बड़ी विनम्रता से यह कहकर उनसे माफी मांग ली कि बच्चे को अभी आगे पढ़ना है। "

दीप जी ने आगे बताया कि जब मैं'संडे मेल'में कार्यकारी संपादक था तो किसी खास स्टोरी के लिए रायपुर आया था और बेबीलोन होटल में ठहरा था। मुझे जब पता चला कि बलबीरसिंह जुनेजा यहां के महापौर हैं तो उनसे मिलने का मन किया। शायद रमेश नैयर ने उनसे मेरी भेंट निश्चित की थी। जब मैं बलबीरसिंह जुनेजा से उनके ऑफ़िस में मिलने के लिये पहुंचा तो उन्होंने खड़े होकर मेरा स्वागत किया। अपना परिचय देते हुए उन्हें अपने रिश्ते के बारे बताया कि उनके दादा सुंदरसिंह जुनेजा और मेरे दादा गोबिंदराम जुनेजा दोनों चचेरे भाई थे लेकिन मेरे दादा का जल्दी निधन हो जाने से उन्होंने मेरी इस कमी को कभी महसूस नहीं होने दिया। बलबीरजी ने मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में भींच कर गले लगाया। हम दोनों भाई जो थे। बलबीर जी ने बताया कि उनके पिता इंदर सेन और माता शांति रानी यहां नज़दीक ही हैं, आप उनसे मिल लें। उन्होंने मुझे अपनी गाड़ी से अपने माता पिता से मिलने के लिए भेजा। जब मैंने चाचा और चाची जी को पैरी पौना किया तो पहली नज़र में उन्हें मुझे पहचानने में दिक्कत पेश आयी। एक बार पहचान लेने पर गले लगाया और परिवार तथा काम के बारे में पूछा। उन्हें यह जानकर खुशी हुई कि मैं पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत हूं। चाची जी का एक भाई दिलबाग सिंह मेरा गहरा दोस्त था। उनके छोटे भाई और बहन से भी मैं परिचित था। वे लोग तात्यापारा में रहते थे और हम लोग भी। रायपुर में रहते हुए यह जानकर अच्छा लगा कि बलबीरसिंह जुनेजा वहां के लोकप्रिय महापौर हैं। उन्होंने मेरे फुफेरे भाई हरबंससिंह सलूजा तथा अन्य कुछ रिश्तेदारों से मिलने के लिए गाड़ी का प्रबंध किया। उनकी यह सहृदयता दिल को छू गयी। लेकिन युवा अवस्था में उनके निधन की खबर पाकर मन बहुत दुखी हुआ। बलबीरसिंह से हुई यह मुलाकात आज भी मेरे दिल में बाविस्ता है। "

'दिनमान'के वे दिन...

अज्ञेय जी के आग्रह पर त्रिलोक जी'दिनमान'से जुड़ गए। और देखते-ही-देखते दिनमान के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर बन गए। अज्ञेय इनसे बहुत लगाव रखते थे। दीप जी के लिए अज्ञेय जी बड़े आदर्श थे। अज्ञेय जी के बारे में उनके पास अनेक रोचक संस्मरण हैं। एक तो कमाल का है। रात को दिनमान पत्रिका का काम पूरा होना था। तब त्रिलोक जी ने देखा कि एक पेज का मैटर कम दस है, उसे कम्पोज करने वाला कंपोजीटर नहीं है। उन्होंने अज्ञेय जी को फोन किया। अज्ञेय जी रात को ग्यारह बजे प्रेस पहुंचे और मजे की बात, उन्होंने पूरा मैटर कुशल कंपोजीटर की तरह कंपोज किया। जब उनसे पूछा गया कि आपने कंपोजिंग कैसे कर ली, तो उन्होंने बताया कि जब मैं इलाहाबाद में था, तो वहाँ से साहित्यिक पत्रिका'प्रतीक'निकालता था। उस समय कभी-कभी कंपोजिटर नहीं आते थे, इस कारण कम्पोजिंग सीख ली। अज्ञेय जी एक सिद्धहस्त फोटोग्राफर भी थी। अज्ञेय जी तो हवाई जहाज तक उड़ा लेते थे। वे स्वतंत्रता सेनानी भी थे। जेल में वह काल कोठरी में रहना पसंद करते थे और अकेले रहकर साहित्य सर्जन किया करते थे। त्रिलोक जी का सौभाग्य रहा कि उन्हें एक बड़े रचनाकार का सानिध्य लाभ मिला। अज्ञेय जी ने त्रिलोक दीप से खूब लिखवाया भी। रघुवीर सहाय भी दिनमान की एक पहचान थे। लेकिन त्रिलोक दीप भी कम नहीं थे। दिनमान में प्रकाशित उनके लेखों के हम सब बड़े कायल थे। जिस समय दिनमान में उनके लेख, संस्मरण, यात्रा वृतांत आदि छपा करते थे, उस वक्त मैं दिनमान का नियमित पाठक था। दिनमान के कारण ही पत्रकारिता में पत्रकारिता में मेरी गहरी रुचि होने लगी। उस वक्त मेरे वैचारिक पत्र दिनमान में प्रकाशित कर हुआ करते थे। त्रिलोक दीप संस्मरण लिखने में माहिर थे। उनकी पुस्तक'पाकिस्तान नामा'और'वे दिन वे लोग'पढ़कर हम उनकी सहज, सरल यानी किस्सागोई वाली लेखनी से रू-ब-रू हो सकते हैं। पहले'दिनमान'और फिर'संडे मेल'में रहते हुए घुमन्तू पत्रकार के रूप में चर्चित त्रिलोक दीप देश-दुनिया की अनेक यात्राएं की। कनाडा, हंगरी, पोलेंड और पाकिस्तान के उनके यात्रा-वृतांत पढ़ने लायक हैं। यूरोप के अनेक देशों का उन्होंने भ्रमण किया। विदेश प्रवास के दौरान उसे जब कोई भारतीय मिलता, तो वह बहुत प्रसन्न होते थे। भारत के लोग भी उन से मिलकर खुशी का इजहार करते थे। लद्दाख प्रवास का उनका रिपोर्ताज भी बेहद दिलचस्प है। अभिषेक कश्यप के संपादन में निकली पुस्तक'त्रिलोक दीप का सफर' और'संस्मरणनामा'पढ़कर हम उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। संघर्षशील जीवन को जीते हुए एक व्यक्ति कैसे अपना श्रेष्ठ मुकाम हासिल करता है, इसे समझने के लिए त्रिलोक दीप के जीवन को देखना बहुत जरूरी है। आज भी वे फेसबुक के माध्यम से समसामयिक विषयों पर विस्तार के साथ लिखते हैं। और सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी लेखनी हमें इतिहास से भी भलीभांति परिचित कराती चलती है। त्रिलोक दीप अदम्य साहसी पत्रकार भी रहे हैं। जब पंजाब में हालात अच्छे नहीं थे, तब भी वहां जाकर वे रिपोर्टिंग करते थे। उन्होंने उस समय के चर्चित उग्रवादी जनरल सिंह भिंडरावाले का इंटरव्यू भी किया था। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की जब हत्या हुई, तो इसकी रिपोर्टिंग करने त्रिलोक जी पहुंच गए थे। हालांकि वहां एक सरदार को देखकर उपस्थित लोगों को बड़ा गुस्सा आया। लोग उनके साथ अभद्र हरकत करने पर आमादा थे इसलिए उन्हें वहां से अलग किया गया। फिर भी त्रिलोक दीप पूरे मामले को कवर करके उस समय के संपादक कन्हैयालाल नंदन को सौंप दिया। इस दौरान उनकी जान खतरे में थी। उन्हें बड़ी मुश्किल से कार में छिपा कर उस इलाके निकालकर उनके घर तक पहुंचाया गया था। उक्त दोनों उदाहरण एक जांबाज पत्रकार के दुःसाहसी चरित्र को बताने के लिए पर्याप्त है।

त्रिलोक जी के समग्र जीवन को देखने-समझने के लिए अब तो हम यूट्यूब के माध्यम से भी उनके कुछ वीडियो को देख सकते हैं। फेसबुक में दर्ज हों उनके असंख्य संस्मरणों के माध्यम से उनके व्यक्तित्व-कृतित्व जान सकते हैं। अंत में मैं यही कहूंगा कि हिंदी पत्रकारिता की स्वर्णिम अखंड ज्योति का नाम है त्रिलोक दीप। यह दीप निरंतर प्रज्वलित रहे। आप हमारा मार्गदर्शन करते रहें। हमें स्नेह लुटाते रहें। उनको असीम शुभकामनाओं के साथ अपनी भावनाओं को यही विराम दे रहा हूँ।

हिंदी पत्रकारिता का दीप स्तंभ हैं त्रिलोक दीप

सर्जना शर्मा

पत्रकारिता एक ऐसा व्यवसाय है जहां मेहनत के अलावा किस्मत, अवसर, और सबसे बड़ी बात है आपका बॉस कैसा है। यदि मेहनत बुद्धिमता के अलावा आपके पक्ष में बाकी के सभी फैक्टर भी हैं तो समझ लिजिए पत्रकारिता की टेढ़ी मेढ़ी, ऊंची नीची राह आपके लिए आसान हो जाएगी। मुझे अपने पत्रकारिता प्रशिक्षण के दिनों से लेकर अब तक खट्टे मीठे अनुभव रहे। कुछ वरिष्ठ और बॉस बहुत अच्छे मिले कुछ ने मुझे निकाल फेंकनें और मुश्किलें खड़ी करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। हमारे बड़े बूढ़े औओर शास्त्र कहते हैं हमेशा जीवन के अच्छे अनुभवों और जीवन में मिले अच्छे लोगों को याद रखो। आज जब मैं पीछे मुड़ कर देखती हूं तो उन अच्छे, स्नेह से भरपूर शांत सौम्य और हमेशा मार्गदर्शन करने वाले मेरे वरिष्ठों में माननीय त्रिलोक दीप जी हैं। उनकी छत्र छाया में काम करने का सौभाग्य संडे मेल साप्ताहिक में मुझे मिला। मेरी मित्र अरूणा सिंह मे वहां मेरा इंटरव्यू करवाया और इंटरव्यू बोर्ड ने मेरा चयन कर लिया। ये वो दिन थे जब प्रिंट मीडिया का बोलबाला था। टाईम्स हाऊस, हिंदुस्तान टाईम्स हाऊस की पत्रिकाओं को बड़ा नाम था। धर्मयुग, सारिका, दिनमान, फिल्मफेयर इलेस्ट्रेटिड वीकली, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कादंबिनी, नंदन और पराग जैसा पत्रिकाओं की धूम थी। पढञने लिखने का शौक बचपन से ही था। इन सभी पत्रिकाओं को पढ़ती थी सम सामयित विषयों के लिए दिनमान का कोई सानी नहीं था। दिनमान की टीम में हिंदी जगत की बड़ी हस्तियां थी। हीरा नंद वात्सयायन, रमेश बतरा, उदय प्रकाश, जवाहर कौल, महेश्वरदयालु गंगवार, त्रिलोक दीप इनके लेख पढ पढ़ कर हम बड़े हुए। इनसे सामने मिलना एक सपना सच होने के समान था। और त्रिलोक दीप जी के कारण जिनमान की 90 फीसदी टीम संडे मेल में आ गयी थी। त्रिलोक दीप जी से आमने समाने मिलने का अनुभव किसी शीतल स्पर्श जैसा था। नरम गरम लोगों को बीच पुल का काम करते थे दीप जी।

संडे मेल के दफ्तर में दीप जी की उपस्थिति केवल मुझे नहीं वहां काम करने वाले पूरे स्टॉफ को आश्वस्त करती थी। किसी को कोई नाराज़गी हो ऊंच नीच हो दीप जी सब संभाल लेते थे। उनकी सबसे बड़ी ख़ूबी थी अपनी टीम की क्षमताओं पर भरोसा करना उनको काम करने की आज़ादी देना। मुझे याद नहीं कि कभी पांच साल के कार्यकाल में उनको कभी ऊंचा बोलते नहीं सुना। सबको अपने प्यार से स्नेह से समझा बुझा लेते थे। दीप जी की लेखनी की मैं बचपन से कायल थी उनके व्यक्तित्व की भी मुरीद हो गयी। उनके मार्गदर्शन में काम करके उनकी लोकप्रियता और सफलता का राज समझ आया। कहते हैं ना आई क्यू से ज्यादा इमोशनल क्वोशंट जरूरी है। लेकिन दीप जी के व्यक्तित्व में आई क्यू और ई क्यू दोनों का अद्भुत संगम है। उन पर अरदास की वो पंक्तियां भी पूरी तरह सही बैठती है – खालसे दा मत ऊंचा मन नींवा मत दा राखा आप श्री वाहेगुरू। कभी आज तक मैनें उनको गरूर में नहीं देखा हमेशा डॉऊन टू अर्थ जिसे कहते हैं ज़मीन से जुड़े रहते हैं। पत्रकारिता की आने वाली पीढ़ीयों के लिए दीप जी दीप स्तंभ रहेंगें। न जाने कितने मीडिया संस्थानों में मैनें नौकरी की। बहुत से सीनियर मिले कुछ से सपंर्क रहा कुछ से छूट गया। लेकिन ये मेरा सौभाग्य है कि त्रिलोक दीप जी छत्रछाया आज भी मुझे प्राप्त है जन्मदिन पर कभी फोन करना नहीं भूलते, मुझे कोई पुरस्कार मिले सम्मान मिले सोशल मीडिया पर प्रशंसा करना बधाई देना और प्रोत्सहान देना उनकी आदत में शामिल है। और हां फोन करना कभी नहीं भूलते। संडे मेल 1995 में छूट गया था लेकिन उनसे संपर्क नहीं छूटा। उनके साथ संबंध साल दर साल प्रगाढ़ ही हुए। उनका फोन जब आता है तो पंजाबी में स्नेह से जब पूछते हैं --- कि हाल है कुड़िए (क्या हाल है लड़की) मन स्नेह से भीग जाता है। मेरे बीजी पापा जी अब इस दुनिया में नहीं है। लेकिन दीप सर का फोन जब आता है जब उनसे मिलना होता है तो लगता है वे केवल पत्रकारिता में मेरे बॉस ही नहीं थे आज वो मेरे घर के बुज़ुर्ग जैसे हैं। जिनकी स्नेह छाया मुझे दशकों से मिलती आ रही है। उनका स्नेह हम पर बना रहे ईश्वर उनको सौ बरस की आयु दे।

हमारे 'दीप' अंकल

हेमा सिंह, (सुप्रसिद्ध अभिनेत्री, रा.ना.वि. में'अभिनय'की पूर्व प्राध्यापिका, वर्तमान में रंगकर्म में कार्यरत)

एक नाम, बचपन में अपने स्वर्गीय पिता श्री रघुवीर सहाय के मुँह से अक्सर सुना करते थे कि" दीप जी का फोन आए तो उन्हें यह संदेश दे देना या वह फ़ोन पर ही बात करते

"हाँ दीप जी ... ." फिर समय बीतता गया और हम अपने कामों मे व्यस्त होते गए, मगर इस नाम की गूँज अक्सर कानो में आती रहती थी क्योंकि यह नाम बहुत प्रेम और अधिकार के साथ घर में पिता लिया करते थे। दीप जी मेरे पिता स्वर्गीय रघुवीर सहाय (संपादक'दिनमान'पत्रकार, कवि, अनुवादक) के करीबी मित्रों में रहे हैं। सन् 2020 दिसम्बर में पिता जी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में महीने भर चलने वाले जनसुलभ पुस्तकालय के कार्यक्रम में, वह पिता जी की खूबियों का, आनंद और भावुकता के साथ विश्लेषण करते हुए, धाराप्रवाह बोले। उसे सुन कर और उनका लेखन, कर उनके व्यक्तित्व की विभिन्न छटाओं से और गहरा परिचय हुआ। श्री त्रिलोक दीप जी के व्यक्तित्व की खासियत है कि वह विशाल होनें के साथ-साथ बहुत सरल भी है।

कई विशेषताएँ उनके साथ जुड़ी हैं। सबसे पहले तो वह बहुत सकारात्मक सोच वाले व्यक्ति हैं। सारी कठिनाईयाँ और चुनौतियाँ उनकी पत्रकार वाली नजर से गुज़रती हैं और वह उनका विश्लेषण कर उनका सामना कर लेतें है। पिछले वर्ष उन्हें हृदयाघात हुआ था। अगर हम उसका अनुभव, उनके शब्दों में पढ़ें, तो लगता है कि अपनी सकारात्मक सोच के कारण ही वह , डाक्टर और कर्मचारियों में मानवता, सहृदयता और संवेदनशीलता जैसे भाव खोज कर, स्वस्थ होकर लौटे। वह एक ज़िंदादिल इंसान हैं। उनकी मित्रमंडली में अलग- अलग उम्र के अनेक मित्र है और उनसे उनकी मित्रता भी अद्भुत है। एक जगह कितना सुंदर लिखते हैं दीप जी -

" मेरे पाँच दशकों का जोड़ीदार, शारीरिक तौर पर इस साल मेरे साथ कम रहा, लेकिन रूहानी तौर पर सदा मेरे साथ ही रहा है, और रहेगा। "

यह लिखना अहसास कराता है, कि कितनी प्रगाढ़ता से वह किसी के साथ जुड़तें हैं। ज़िंदादिली से जीना, उनके जीने का तरीका है।

एक पत्रकार के रूप में उनकी अपनी एक शैली है, जिसमें वह राजनीति, संस्कृति, साहित्य, कला और सभ्यता सबको मिला कर चलतें हैं। बहुत मन है, कि कभी मौका निकाल कर पुरानी'दिनमान'पत्रिका में छपे उनके लेखों को दुबारा पढ़ा जाय।

जिस ख़ूबी से वह अपने शब्दों और भावनाओं के साथ किसी भी बात का वर्णन करतें हैं वह आँखों के सामने चित्र खड़ा कर देता है। भाषा की सरलता सीधे मन को छू जाती है मानो कोई आपसे बतिया रहा हो।

शब्दों की विविधता ऐसी है जो हरेक बात की बारीकियाँ सामने ला देती है। उनकी यात्राओं के ब्यौरों इस बात के गवाह हैं। उनकी अनेक रिपोर्टें चर्चित रहीं हैं।

वह उस पीढ़ी के पत्रकार रहे हैं जो अथक परिश्रम से, तथ्यों की गहरी छान-बीन करके रिपोर्ट तैयार किया करते थे। कई पक्षों पर उन्होनें लिखा है: शिक्षा, धर्म, संस्कृति, राजनीति, लोगो के विश्वास और आचरण। और वह एक तरफा नही बल्कि तटस्थ और तथ्यात्मक होता था। वह उन पत्रकारों

की पीढ़ी से हैं जिन्होनें नई पत्रकारिता की नींव रखी और ईमानदारी, विश्वास, आस्था और निष्पक्षता जैसे मूल्यों को दमदार बनाया। उनका होना एक सुंदर जीवन की आशा जगाता है। ईश्वर उनका आशीर्वाद हम पर सदैव बनाए रक्खे।

परम आदरणीय और परम पूज्य त्रिलोक दीप हैं

संतोष भारतीय

डॉ धर्मवीर भारती, श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन, श्री प्रफुल्ल चंद्र ओझा मुक्त, तथा श्री रघुवीर सहाय के बाद की पीढ़ी का हिंदी के द्वारा दुनिया से परिचय जिन लोगों ने कराया उनमें जिन लोगों के नाम शामिल हैं वे आज गुरु परंपरा मैं शामिल हो चुके हैं. उनमें से कुछ लोग हमारे बीच से चले गए लेकिन जो रह गए हैं वे परम आदरणीय है और परम पूज्य भी हैं. ऐसे ही परम आदरणीय और परम पूज्य श्री त्रिलोक दीप हैं.

जब मेरा हिंदी के द्वारा दुनिया से परिचय हो रहा था तब दिनमान मैं श्री त्रिलोक दीप जी का नाम मैंने पढ़ा. बहुत सारे विषयों पर दिनमान में लेख छपते थे और सभी ज्ञानवर्धक और पठनीय होते थे, लेकिन यात्रा वृतांत लिखने की एक नई शैली का परिचय श्री त्रिलोक दीप ने हिंदी जगत को कराया वह अद्भुत था. शब्दों को पढ़ते हुए उन्हें आंखों के सामने घटित होते हुए देखना रोमांचित करता था.

उन दिनों हमारे लिए दुनिया का मतलब भारतवर्ष था, दुनिया का अर्थ जानने के लिए टाइम और न्यूज़ वीक पढ़ना पड़ता था. कठिन और अमेरिकी अंग्रेजी में लिखें शब्द दिमाग में मुश्किल से गुप्त घुसते थे, इस समय श्री त्रिलोक दीप हमारे लिए मसीहा बनकर सामने आए. वह दुनिया में जहां जहां गए वहां के बारे में उन्होंने अपनी अनूठी शैली में वह सारी जानकारियां हमें दी जिस पर आज तक अंग्रेजी पत्रिकाओं का या अंग्रेजी भाषा जानने वाले लोगों का विशेषाधिकार था . इस विशेषाधिकार को तोड़ने वाले व्यक्ति का नाम त्रिलोक दीप था. हिंदी के ऊपर या हिंदी पत्रकारिता के ऊपर इसे नई विविधा के ऊपर हमेशा श्री त्रिलोक दीप का नाम सबसे पहले लिखा जाएगा.

बात के दिनों में जब मुझे पता चला की श्री त्रिलोक दीपसरदार हैं तब मुझे बहुत आश्चर्य हुआ. उनकी भाषा में कहीं भी पंजाबियत नहीं दिखाई दी. एक मजे हुए हिंदी भाषा शास्त्री की लेखनी का कमाल श्री त्रिलोक दीप के लेखन में हमेशा दिखाई दि

बाद में हिंदी की दूसरी बड़ी पत्रिका, रविवार से जुड़ा. तभी एक बहस शुरू हुई की हिंदी पत्रकारिता के ऊपर जिस तरह अब तक साहित्यकारों का प्रभाव दिखता था पत्रकारिता उससे पत्रकारिता अलग है..

यह बहस श्री सुरेंद्र प्रताप सिंह और श्री एमजे अकबर ने शुरू की. श्री सुरेंद्र प्रताप सिंह ने इस बहस में दिनमान के संपादक श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन, जिन का प्रचलित नाम अज्ञेय को भी शामिल कर लिया. पर यह बहस कभी भी प्रतिद्वंदिता नहीं बनी. जब मेरा पहला परिचय श्री त्रिलोक दीप जी से हुआ, तब इसका कारण मुझे समझ में आया. मैं उनसे लेखन मैं, प्रसिद्धि में. उम्र में छोटा था पर उन्होंने जिस तरह से मुझसे बात की उसने मुझे, मेरे अंतर्मन को छू लिया, उन्होंने कहीं अपने बड़े होने का, अधिक ज्ञानवान होने का या अपने ज्यादा अनुभवी होने का रंच मात्र भी एहसास नहीं होने दिया. मुझे लगा ही नहीं कि मैं एक इतने बड़े व्यक्ति के साथ बात कर रहा हूं. जब भी उनका फोन आता है तू प्यार भरे अधिकार के साथ अत्यधिक विनम्रता दिखाते हुए अपनी बात कहते हैं. यह कला आज के साथियों में, विशेष कर पत्रकारों में समाप्त होती जा रही है.

मुझे इश्क बात का गर्व है कि मैं पत्रकारिता के जीवित शिखर पुरुष श्री त्रिलोक दीप को जानता हूं और वह भी मुझे नाम से जानते हैं. इस से बड़े सुख की और सम्मान की मैं कल्पना नहीं कर सकता. यही कामना करता हूं की इस नश्वर जगत में जब तक मैं हूं और जब तक वे हैं, मुझे इसी तरह याद करते रहे और बात करते रहे...

त्रिलोक जी और रमेश हमें बहुत स्नेह करते थे

सुरेन्द्र सुकुमार

त्रिलोक दीप जी को हम तब से जानते हैं जब वो " दिनमान " में कार्यरत थे। वे दिन हमारे गर्दिश के दिन थे हम बीस बीस दिन दिल्ली में पड़े रहते थे। हमारा अड्डा होता था रमेश बतरा का लॉरेंस रोड वाला फ्लैट जोकि वास्तव में डॉक्टर जगदीश चन्द्रकेश का था। हम दिन भर रमेश के साथ सारिका के दरियागंज वाले ऑफिस में बीतता था " दिनमान " और " सारिका " का ऑफिस एक ही फ्लोर पर था, उस समय सारिका के सम्पादक कन्हैया लाल नंदन थे और अवधनारायण मुदगल, सहायक सम्पादक थे और रमेश, सुरेश उनियाल, महावीर प्रसाद जैन उप सम्पादक थे उस समय दिनमान में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, महेश्वर दयाल गंगवार और त्रिलोक दीप दिनमान में थे त्रिलोक जी और रमेश हमें बहुत स्नेह करते थे। हम भी त्रिलोक जी के बृहद ज्ञान और उनकी विदेश यात्राओं और उस यात्रा के संस्मरणों को पढ़ चुके थे जो बेहद रोचक और ज्ञानवर्धक होते थे।

हमें नंदन जी मुदगल जी सब बहुत स्नेह करते थे। कुछ समय बाद नंदन जी ने सारिका छोड़ कर संडे मेल ज्वाइन कर लिया और रमेश बतरा, त्रिलोक दीप जी को अपने साथ ही ले गए।

हमने सोचा कि हम खाली ही हैं बेकार भी तो क्यों न हम भी संडे मेल ज्वाइन कर लें, इस सिलसिले में हमने नंदन जी से बात की नंदन जी बोले ठीक है अच्छी बात है पर हमारी एक शर्त है कि "तुम कवि सम्मेलन नहीं करोगे"

हमने कहा कि "भाई साहब आप भी तो कवि सम्मेलन करते हैं फिर अधिकतर कवि सम्मेलन शनिवार को होते हैं तो शनिवार रविवार तो छुट्टी रहती है हम शनिवार, रविवार के कवि सम्मेलन कर लिया करेंगे। "

नंदन जी ने मना कर दिया

हम सोच ही रहे थे कि क्या किया जाए तभी त्रिलोक जी ने हमें समझाया कि जितनी तनख्वाह तुमको महीने भर में मिलेगी उतना पैसा तो तुम एक कवि सम्मेलन में कमा लोगे फिर क्यों किसी की गुलामी करना। " हमें उनकी यह बात बहुत भाई और हमने संडे मेल ज्वाइन करने का विचार त्याग दिया।

उन्हीं दिनों रमेश को शराब की लत ने जकड़ लिया त्रिलोक जी रमेश को एक बड़े भाई की तरह से बहुत समझाते थे कि दिन में पीना छोड़ दें पर रमेश पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। नंदन जी ने भी रमेश को कई बार वार्निंग दी कि यदि दिन में शराब पीना नहीं छोड़ा तो मालिकों से पकड़वा देंगे पर रमेश तो रमेश थे उन पर किसी की बात का कोई असर नहीं पड़ा।

त्रिलोक जी ने भी बहुत ही कोशिश की पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा और वही हुआ जो होना था नंदन जी ने उन्हें ऑफिस टाइम पर नशे की हालत में पकड़वा दिया और रमेश को नोकरी से निकाल दिया गया।

फिर तो रमेश कहीं के भी नहीं रहे दिन रात शराब, शराब और शराब उसके बाद तो रमेश के सर में टयूमर हो गया और लाख कोशिश के बाद भी रमेश को नहीं बचाया जा सका।

रमेश की मृत्यु से सबसे बड़ी क्षति हमें हुई और त्रिलोक जी का तो जैसे सगा छोटा भाई ही चला गया हो वो तो टूट से ही गए।

त्रिलोक जी से बहुत दिनों से मिलना नहीं हो पाया है पर फोन पर यदाकदा बात हो जाती है हम फेसबुक पर भी मित्र हैं उनका लिखा हम पढ़ते रहते हैं और कमेंट करते हैं और वो भी हमारा लिखा पढ़ते रहते हैं और वो भी कमेंट करते रहते हैं अब तो इतना ही सम्बंध है पर लगता है कि जैसे हम बहुत ही क़रीब हैं।

त्रिलोक जी बेहद संवेदनशील और दूसरों की मदद करने वाले इंसान हैं प्रभु उनको और उनके लेखन को उम्रदराज करें आमीन!

□□□

उनकी फ़ैमिली के बिना उन पर लिखना एकदम अधूरा रहेगा

सुषमा जगमोहन

त्रिलोक दीप जी के बारे में लिखना है। तो उनकी फ़ैमिली के बिना उन पर लिखना एकदम अधूरा रहेगा।

रुकिए।

यहाँ फ़ैमिली से मेरा मतलब दिनमान से है। दिनमान से जुड़े सभी लोग एक परिवार की ही तरह थे। टाइम्ज़ समूह की इस साप्ताहिक पत्रिका का अपना एक खूबसूरत समय रहा है।

मैं १९७८ से ही शुरू करती हूँ, जब मैंने दिनमान में पहला कदम रखा था। पहली क़तार में सबसे पहली टेबल सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी की। दूसरी श्यामलाल शर्मा जी की, तीसरी त्रिलोक दीप जी की। सर्वेश्वर जी की टेबल सम्पादक रघुबीर सहाय के केबिन की टेबल सम्पादक रघुबीर सहाय के केबिन के सामने। दूसरी ओर सहायक सम्पादक जितेंद्र गुप्त का केबिन। बाक़ी सब सर्वेश्वर जी के नेतृत्व में हॉल में।

एक ओर जहाँ सर्वेश्वर जी, श्यामलाल शर्मा जी और महेश्वर दयालु गंगवार जी के ठहाके गूंजते रहते थे, दीप जी आँखों में ही मुस्कुरा

देते थे। बोलने में भी काफ़ी कंजूसी बरतते थे। प्रयाग शुक्ल जी भी बिलकुल दीप जी की ही तरह, बिलकुल नापतोल कर बोलने वाले।

**

ओह लगता है विषयांतर हो रहा है। पर उसके बिना भी मज़ा नहीं।

दिनमान राजनीतिक पत्रिका थी। लेकिन अंतरराष्ट्रीय, मानवीय संवेदना वाले विषय, कला, साहित्य, संस्कृति, सिनेमा, खेल आदि सभी विषय उसे एक पूर्ण रूप देते थे। क्राइम की भी महत्वपूर्ण खबर की खबर ज़रूर ली जाती थी।

राजनीतिक विषय पर तो लगभग सबको लिखना ही होता था।

राजनीतिक विषयों के पारंगत दीप जी अंतरराष्ट्रीय और क्राइम विभाग के प्रमुख थे। इन दोनों विषयों में मुझे उन्हें सहयोग

करना होता था। मुझे अब भी याद है। आठवीं क्लास के एक बच्चे की सूयसायड की चार लाइन की खबर थी अख़बार में। दीप जी ने कहा, इस पर स्टोरी करनी चाहिए मुझे। तब ऐसी खबर कॉमन नहीं थी, वह भी दिल्ली के देहात से।

शुरू में मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूँ? पर दीप जी के सहयोग से एक बड़ी स्टोरी बनी वह। पूरा विश्लेषण। मैं ख़ुद हैरान थी।

ख़बरों को सप्ताह भर बाद भी कैसे ज़िंदा रखा जा सकता है, साप्ताहिक में यह सीखना सबसे ज़्यादा ज़रूरी होता है।

दीप जी से मुझे इसकी अच्छी ट्रेनिंग मिली। विषय पर बात करते समय यह ज़रूर बताते थे, कि कौन से सवालों को बूझते हुए चलना है, कि स्टोरी सात दिन बाद भी जीवंत रहे।

**

दिनमान में समय का बंधन कोई नहीं था। हर व्यक्ति रिपोर्टर भी होता था, सब एडिटर भी। वैसे सुबह साढ़े दस तक पहुँचना होता था। लेकिन कोई सुबह दस बजे पहुँचे या शाम चार बजे। कोई पूछताछ नहीं। आपकी अपनी ज़िम्मेदारी। बस सर्वेश्वर जी को बता देना होता था। स्टोरी समय पर कर दें, बस। बुधवार को सब सुबह से दिखाई देते थे। वह दिनमान रिलीज़ का दिन होता था।

हम जूनियर लोग कोशिश करते थे, एक बार सुबह साढ़े दस के आस पास ऑफ़िस पहुँच जाएँ। फिर रिपोर्टिंग के लिए निकलें। सीनियर अक्सर देर से पहुँचते थे। लेकिन दीप जी का डिसप्लिन कमाल। वह अक्सर सुबह अपनी सीट पर मिलते, नोट्स तैयार करते हुए।

दिनमान में नियम था, हर स्टोरी टाइप करा कर प्रेस में भेजी जाती थी। सूरिंदर जी और रमेश जी टाइपिंग विभाग से थीं, सो सब नोट्स लेकर उनके पास पहुँच जाते थे। डाइरेक्ट डिक्टेशन दी जाती थी। रमेश जी की असमय मृत्यु के बाद वहाँ सुरेश जी आ गए थे। आनंद सिंह नेगी सम्पादक रघुबीर सहाय के साथ थे, इसलिए उन्हें बहुत ज़रूरत पर ही डिस्टर्ब किया जाता था। इतनी लम्बी कहानी के पीछे कारण है।

सोमवार और मंगलवार को ख़ासतौर से हम, वही, जूनियर लोगों की कोशिश रहती थी कि दीप जी से पहले डिक्टेशन देने पहुँच जाएँ लेकिन भागते हुए जब तक पहुँचते, दीप जी रमेश जी या सूरिंदर जी को डिक्टेशन दे रहे होते। साथ में चाय चल रही होती। उनसे पहले पहुँचने में सफलता कभी एकाध बार ही हाथ लगी हो तो कह नहीं सकती।

सो, मिनटों के हिसाब से समय की पाबंदी दीप जी से ही सीखी।

**

दीप जी गुप्त दान महा कल्याण में यक़ीन रखते हैं। यानी किसी की भी किसी भी रूप में मदद करते थे, लेकिन उनके होठों से शब्द बाहर नहीं आते थे। पता चलता था तो उसी व्यक्ति से, जिसकी वह मदद करते थे। कोई साथी दूसरी जगह नौकरी की कोशिश में लगा हो, कोई या किसी की फ़ैमिली में कोई गंभीर बीमारी हो तो, या ऐसे ही ना जाने कितने काम, दीप जी तक बस बात पहुँच जाए, काम हो जाता था।

**

उनकी स्मरणशक्ति भी ग़ज़ब, अब तक भी।

पिछले दिनों फ़ेसबुक पर दीप जी की विदेश यात्राओं के संस्मरण पढ़ रही थी। हैरान हूँ, क्या स्मृति है! हू बहू इस तरह शब्दों को पिरो दिया है उन्होंने, जैसे कुछ महीने पहले का ही घटनाक्रम हो। मुझे तो अब याद ही नहीं रहतीं ढेर सारी बातें। कभी कभी क्लीन स्लेट नज़र आती है।

इस बारे में भी दीप जी से टिप्स लेने होंगे।

आठ बादाम वाले नुस्ख़े का तो कमाल हो नहीं सकता यह।

हाँ, उनकी विदेश यात्राओं से जुड़ी एक बात याद आयी। उनकी विदेश यात्रा के बारे में खबर मुझे सर्वेश्वर जी से मिलती थी। वह हम सबके बॉस थे। सर्वेश्वर जी मुझे धीरे से बुला कर कहते, 'सुषमा, दीप जी से काम समझ लो, कल से तुम्हें सम्भालना है उनका काम।

'क्या हुआ?'मेरी प्रतिक्रिया होती।

'विदेश जा रहे हैं दीप जी।'

मैं हैरान दीप जी की तरफ़ देखती। कमाल है। अभी तो दीप जी से बात हो रही थी। रोज़ ही

तो बात होती है, उन्होंने तो कोई ज़िक्र नहीं किया। वैसे बिग बॉसेज़ के अलावा उनका कार्यक्रम किसी को पता नहीं होता था।

दीप जी से पूछती तो बस विनम्रता से मुस्कुरा देते। मानो कह कह रहे हों, इसमें क्या है। काम है तो जाना है।

बाद में तो आदत हो गई थी, एक दो दिन पहले ही जानकारी मिलती उनकी विदेश यात्राओं की।

दूसरी ओर हम लोग थे, एमपी, यूपी का भी टूर होता तो, पता चलते ही सबको खबर हो जाती।

*

दिनमान का ऑफ़िस दस नम्बर दरियागंज में था। और सात नम्बर दरियागंज में हलवाई की वह दुकान थी। शाम को चार बजे के आसपास वहाँ गरमागरम जलेबी दही के साथ मिलती थी। काम ख़त्म हो गया हो, तो भी, ख़त्म नहीं हुआ हो तो ब्रेक के बहाने अक्सर दिनमान के लोग वहाँ पहुँच ही जाते थे-महेश्वर दयालु गंगवार, जवाहर लाल कौल, रामसेवक श्रीवास्तव, दीप जी, शुक्ला रूद्र और भी सभी साथी।

उस समय जो भी वहाँ से गुजरता, उस दही जलेबी की दुकान पर उसको रुकना ही रुकना होता।

और तब वहाँ शुरू होतीं ताज़ातरीन राजनीतिक बहसें। कभी कभी तो लगता पूरा एडिटोरीयल डिस्कशन चल रहा है।

सम्पादक रघुबीर सहाय जी भी कभी कभार ब्रेक लेने के लिए फ़ुरसत में वॉक पर निकलते थे तो उन्हें भी इस मीटिंग पोईंट का पता चल गया था। कभी कभी वह भी हमें सर्प्राइज़ दे देते थे। उस दिन तो कोरम पूरा हो जाता था।

1980 के आसपास का समय हो रहा है। दही जलेबी की मिठास के साथ ही समापन कर दूँ, ठीक रहेगा।

अरे, अरे, दीप जी ऑफ़िस के सामने वाली वह बालूशाही याद है आपको। उसकी मिठास भी कैसे भूली जा सकती है।

त्रिलोक भाई का विश्वासी

चंचल

ख़ुशनसीब रहा हूँ, दीपजी (श्री त्रिलोक दीप) की सोहबत मिली, सुहागा यह कि पत्रकारिता की बस्ती में दाखिल होते ही जिन क़लमकारो ने हमे चलना सिखाया उनमे दीप जी की फ़राक़दिली शामिल रही। आगे बढ़ूँ इसके पहले दीप की उस शख़्सियत का खुलासा करदूँ कि बाँटने या लुटाने की एक अलहदा अदा दीप जी को औरों से थोड़ा अलग खड़ा कर जाती है। इस जीनिस में टिफ़िन का पराठा हो या " ज्ञान " की सही दिशा, दीप जी की ख़ज़ाना हमेशा खुला रहता रहा है, दीप जी की सोहबत में आए लोग बताते हैं कि दीप जी की इस " ख़राब " आदत में अभी भी कोई संकोच नहीं है, वही मुक्त हस्त, ख़ुद के तबाह तक हो जाने तक फ़राक़दिली -

- सुनो ! तुमने बताया नहीं, यह परेशानी है, हूँ न ! और उनकी बंद मुट्ठी आहिस्ता से सामनेवाले की जेब में।

- इंटरव्यू लेना है, नेता तफ़ लगे तो आसान सवाल की तरफ़ घुमा दो, सारे पेंच खुल जान्यगे।

पत्रकारिता में तमाम आयाम दीप जी के खीसे में, रपट, संस्मरण, यात्रा, देश या विदेशनिति सब डीपजी के टहलू माफ़िक़ ताज़ा तरीन, धुले - धुलाये, शब्दों की अलग पहचान देते घोषित करते चलते कि जनाबे आली ! ये हैं तिलोक दीप जहां भाषा की रवानी और बात - बतकही न केवल मीठी ध्वनि देते हैं बल्कि पाठक के सामने अलग का प्रतिविंब गढ़ते हैं।

इस दीप जी से हमारी मुलाक़ात एक मशहूर अख़बार " दिनमान " में हुई। सत्तर अस्सी का दसक था, हम काशी विश्वविद्यालय से पत्रकारिता करके टटके दिनमान में बतौर प्रशिक्षु पहुँचे थे, वहाँ दीप जी पत्रकारिता की अगली क़तार में खड़े थे। उन दिनो दिनमान का आलम ही कुछ और था। अज्ञेय जी जा चुके थे, यहाँ यह ज़िक्र करना ज़रूरी है कि दीप जी का चयन, दिनमान में अज्ञेय जी ने ही किया था। इससे दीप जी की क़ाबलियत का अन्दाज़ लगाया जा सकता है। बहरहाल, अज्ञेय जी के बाद रघुवीर सहाय जी सम्पादक बने थे। दिनमान की तूती बोलती थी। संपादकीय विभाग में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, प्रयाग शुक्ल, श्री कांत वर्मा, मनोहर श्याम जोशी, तिलोक दीप, शुक्ला रुद्र, नेत्र सिंह रावत , विनोद भारद्वाज, जवाहर लाल कौल और श्यामलाल शर्मा जी जैसे धुरंधर पत्रकार जुड़े थे। हम जब दिनमान से जुड़े तब तक मनोहर श्याम जोशी " साप्ताहिक हिंदुस्तान " के सम्पादक होकर जा चुके थे और श्रीकान्त वर्मा सियासत की और झुक चुके थे।

पत्रकारिता के साथ साथ ज़िंदगी जीने का सलीका और ज़िंदादिली भाई त्रिलोक दीप के यहाँ ही मिलता है। उनके दीर्घायु की कामना करता हूँ।

त्रिलोक भाई का विश्वासी